अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

यज्ञ

कालीपट्नम रामाराव

अनुवाद
दंडमूडि महीधर
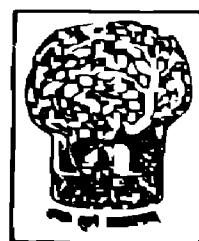
नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

अनुक्रम

भूमिका

डा. सैमुअल जानसन ने ऑलिवर गोल्ड स्मिथ के संबंध में लिखा था कि वह जो भी रचना करते थे, बहुत ही सजा-संवारकर पाठकों के सम्मुख रख देते थे। तेलुगु में एक मुहावरा है 'पट्टिंदला बंगारम' अर्थात् जो भी हाथ में लिया सोना बन गया--यह बात श्री कालीपट्नम रामाराव के संबंध में बहुत ठीक बैठती है।

श्री रामाराव ने तेलुगु में बहुत अच्छी कहानियां लिखी हैं। छोटी और लंबी, दोनों प्रकार की कहानियां लिखकर तेलुगु कथा साहित्य की श्रीवृद्धि में अपना योगदान ही नहीं दिया बल्कि उसमें नये आयाम जोड़कर उसे एक नयी अर्थवत्ता, एक नयी जीवंतता प्रदान की। शुरू-शुरू में इन्होंने बहुत सारे स्केच भी लिखे। इन्होंने जो भी लिखा उसे बहुत सजा-संवारकर पाठकों के सम्मुख रखा। उसे सोना बना दिया। मन को झिंझोड़ने वाली उच्चस्तरीय कहानियां लिखकर उन्होंने पाठकों के मन में अपना एक खास स्थान बनाया है।

'यज्ञम' कहानी से यह स्पष्ट है कि इसमें लेखक ने अपने कौशल और अनुभव से ऐसी चमक ला दी है, जो मन को मोह लेता है। यह 'यज्ञम' की कथा वस्तु की करामात है।

उन्होंने अपनी इस कृति से यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि सोने से यदि लक्ष्मी जी की प्रतिमा तैयार की जा सकती है तो उग्र काली माता की भी। मगर सोना तो सोना ही है। सोने से बनी यह प्रतिमा ऐसी-वैसी नहीं, विराट है--उग्र रूप धारण किये हुए काली माता की विशाल प्रतिमा। प्रतिमा चाहे कुछ भी व्यक्त करे, किंतु सोना तो सोना ही है।

तेलुगु के प्रसिद्ध कथाकार श्री इंद्रगंटि हनुमतशास्त्री ने कहानी की व्याख्या करते हुए कहा है कि अच्छी कहानी वही है, जो मानवीय भावनाओं को उद्भूत करे, जीवन का सत्य उजागर करे, साहित्यिक स्तर पर खरे हो, अधिक अर्थ व्यंजक हो और उसका कथ्य बहु आयामी हो।

श्री रामाराव की 'यज्ञम' और आर्ति (दुख-दर्द) कहानियां इन मानदंडों पर खरी उतरती हैं। इनकी भाषा का निजत्व और शैली की विशिष्टता पाठक के मन को छू लेती है और उसे एक नये मोड़ पर लाकर खड़ा कर देती हे। यही नहीं, आम आदमी को लूटने, ठगने

और सताते रहने की प्रक्रिया के खिलाफ संघर्ष करने वाले इंसान के प्रति पाठकों के भीतर एक सार्थक बदलाव की इच्छा पैदा करती है। यही इन कहानियों की उपलब्धि है।

यद्यपि इन दोनों कहानियों का कलेवर बहुत छोटा है, फिर भी पूर्वाभास का परिचय देना आवश्यक हो जाता है। इसलिए कहानी का फलक कुछ विस्तृत अवश्य हुआ है। फिर भी श्री रामाराव की ये दोनों कृतियां छोटी कहानी की श्रेणी में ही गिनी जायेंगी। वास्तव में ये छोटी होकर भी लंबी कहानियां हैं।

गांव-देहात का खेतिहर भूमि की खातिर कुछ भी करने को तैयार हो जाता है। जीवित रहने के लिए उसे भूमि की आवश्यकता है। भूमि की यह चाह इतनी तीव्र रहती है कि वह कालांतर में विराट रूप धारण कर लेती है। युद्ध छिड़ जाते हैं। लड़ाई-झगड़े हो जाते हैं। छल-कपट का बोलबाला हो जाता है। इन कहानियों में वे सारी बातें हैं। गांव से जुड़े ढेरों खट्टे-मीठे अनेक प्रसंग इसमें आपको मिलेंगे।

ये दोनों कहानियां भारत की आज की अस्त-व्यस्त सामाजिक परिस्थितियों का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करती है। आम आदमी, आज आर्थिक विपन्नता से त्रस्त, शोषण से ग्रस्त होकर क्या-क्या व्यथाएं भोग रहा है, किन आशा-निराशाओं के बीच कैसे-कैसे जूझ रहा है--इन सबका पर्दाफाश इन कहानियों में हुआ है। इसमें न्याय-अन्याय का जो चित्रण है, वह संसार में सर्वत्र देखने को मिलता है।

श्री रामाराव की कहानी 'यज्ञम' से तेलुगु कथा साहित्य में एक नये युग का श्री गणेश हुआ है। इस कहानी के प्रकाशन के पूर्व तेलुगु कहानीकार विचारधारा को आधार मानकर रचना नहीं करते थे। 'यज्ञम' के बाद तेलुगु के अनेक कथाकारों पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा। इनकी रचनात्मकता में यथार्थोन्मुखी विचारधारा आ जुड़ी।

'यज्ञम', 'आर्ति' (दुख-ददं) आदि कहानियों के प्रकाशन से पूर्व भी इनकी बहुत-सी कहानियां प्रकाशित हुई थीं। किंतु इन दोनों कहानियों में आम आदमी के संघर्षमय जीवन का चित्र बड़ी जीवंतता के साथ प्रस्तुत किया गया है। पहले की कहानियों में भी इनकी रचनात्मकता की यही झलक देखने को मिलती है।

इसके बाद उन्होंने कई अच्छी कहानियां लिखीं जो खूब चर्चित भी हुईं। 'जीवधरा', 'चावु' (मृत्यु) 'कुट्र' (षडयंत्र) आदि उल्लेखनीय हैं।

इस संकलन की दोनों कहानियों को भारत की किसी भी समृद्ध भाषा की श्रेष्ठ कहानियों की पंक्ति में बिठाया जा सकता है। तेलुगु में इतनी अच्छी कहानियां लिखी जा रही हैं, यह तेलुगु भाषा-भाषियों के लिए सौभाग्य की बात है।

— राचकोंड विश्वनाथ शास्त्री

यज्ञ

तीन साल पहले का वह झगड़ा तीन मास पहले अटक गया था। पिछले तीन दिन से इस पर खूब बहस चल रही थी। अब उस गांव में हवा थी कि चलो, आज फैसला हो ही जायेगा

पशुओं के चरने जाने का वक्त था। यानी सुबह के दस बजे थे।

उस गांव का नाम है - सुंदरपालेम। मद्रास से कलकत्ता जाने वाला ग्रेंड ट्रंक रोड विशाखापट्टनम होते हुए विजयनगरम से कुछ हटकर आगे निकल जाता है। वहां से वह गांव दायीं तरफ छः मील पर, समुद्र से पांच मील परे बसा हुआ है। अगर नजदीक के रास्ते से जायें, तो काकुलम से पंद्रह मील के फासले पर है।

उस गांव के उत्तर-पूर्व और पूर्व में समुद्र की तरफ और दक्षिण में जो भूमि है, वह खुश्क है और बाकी दिशाओं की तरावट है।

बरसात के दिनों में गांव की सरहद के ताड़ वनों का दृश्य देखते ही बनता है। बीच-बीच में घने नारियल के पेड़ और छोटे-मोटे फुटकर वृक्षों की छाया में है, वह छोटा-सा गांव। फिर हरे-भरे लाल-लाल, काले, सफेद और भूरे रंग की खुश्क भूमि है। ताड़ वृक्षों की कतारें और केवड़े की झाड़ियां जैसे उस गांव की सरहदी रेखाएं हैं। नीचे हरे-भरे धान के खेत, बीच-बीच में कहीं-कहीं भरे-पूरे तालाव, जिनके पानी पर चांदी की तरह झिलमिलाती धूप की रोशनियां हैं।

मगर--सुंदरपालेम हर साल जाने वालों को भी ऐसे सुंदर दृश्य विरले ही देखने को मिलते हैं।

उस गांव में पूरे चार सौ मकान हैं जो एक छोटे-से मंदिर से घिरे हुए हैं। बाकी जो मकान हैं, अभी-अभी बने हाईस्कूल के आसपास के हैं।

नये मकानों में आधी तो दुकानें हैं, होटल आदि हैं। बाकी मकान बढ़ती आबादी के लिए बचे हैं और बच रहे हैं।

उस इलाके में सुंदरपालेम एक छोटा गांव है, जैसे अनेक अनाथों के बीच बड़ी राजी-खुशी से समय व्यतीत करने वाला एक सनाथ हो। ग्रांड ट्रंक रोड से मिलाने वाली छः मील की पक्की सड़क, देशभर में जाल की तरह बिछे बिजली के घेरे में छः सात मील तक खड़े खंभे--उस गांव की सुख-सुविधाओं में गिनाये जा सकते हैं।

और तो और यादव गली के नुक्कड़ पर एक डाक घर खुल गया है। तेलियों की गली में विलेज लेवेल वर्कर का दफ्तर और मकान है। हाईस्कूल की गली में अस्पताल और

मातृ-केंद्र है। चर्मकारों की बस्ती और गांव के मध्य भाग में सहकारी गोदाम कायम हो चुके हैं। पटेल की गली में पुस्तकालय खुला है। पटवारी की गली में बिजली का दफ्तर है।

दिन के दस बजे से गांवों में फुरसत हो जाती है। नजदीक के गांव वाले उस समय खाना-पीना पूरा करके ऐसी जगह खोजकर लेट जाने का उपक्रम करते हैं जहां हवा आती हो। कुछ लोग चबूतरों पर बैठकर गप लड़ाते हैं या दूसरे गांवों से अपने काम पर आये हुए लोगों से हंसी-मजाक करने लग जाते हैं। सुंदरपालेम में बिरला ही ऐसा कोई होगा जो सोने की चेष्टा करता हो। उनके मन-बहलाव की जगहें और तौर-तरीके कुछ अलग हैं।

कुछ लोग पान की दुकान के सामने झाऊ की लकड़ी वाली बेंचों पर बैठ जाते है। कुछ लोग होटलों में खूब खा लेते हैं और कुर्सियों पर आसन जमा लेते हैं। कुछ मकानों के सामने के चबूतरों पर, ग्रंथालय में, मंदिर के इर्द-गिर्द मंडप पर बैठ जाते हैं।

बिजली के तार और ए.सी., डी.सी. के बारे में बहस करते हुए कुछ लोग पंपिंग सेट की मरम्मत के बारे में भी बात करने में लग जाते हैं। कुछ लोग अपने गांव की, उसके आसपास के गांवों की राजनीति की चर्चा करते हैं, कुछ लोग आंध्र प्रदेश की राजधानी की सैर करते हुए रूस और अमेरिका तक भी हो आते हैं। ऐसे लोग भी हैं जो फ़िल्म, रेडियो, साहित्य, आम सभाओं, नुमाइशों, विज्ञान, शास्त्र, देश की उन्नति आदि अनेक विषयों पर अपने विचार प्रकट करते हैं और पूछ-पाछ कर मालूम करने वाले लोग भी मौजूद हैं। व्याख्या करके विशद् रूप से बताने वाले भी। लोगों की ऐसी संख्या दिन-ब-दिन बढ़ोत्तरी पर है। अतीत के प्रशंसक भी मिलेंगे और पुरातन के आलोचक भी। किंतु इनकी संख्या कुछ कम है।

जिनके पास ढेरों फुरसत है, वे दिल बहलाने से अपना वक्त गुजार देते हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो कि बगैर फुरसत के निरंतर काम में लगे रहते हैं। उन तंग गलियों में सिर पर भारी घास के गट्ठर लादे, टोकरियों और घड़ों को हाथ में लिये, कंधे पर हल धरे, बैलों को हांकते हुए कुछ लोग जा रहे हैं। उनकी बगल में छोटे-छोटे बच्चों के हाथों में तेल में चुपड़ी रस्सियों से लटकने वाली छोटी-बड़ी शीशियां हैं। लंबे समय से बैलगाड़ियों के चलने से रास्ता दो लीकों में बंट गया था और उन्हीं लीकों में चलने वाले बैलों को हांकते हुए लोग आगे बढ़ रहे थे। मवेशियों के लिए औरतें आंगन में दाना-पानी तैयार कर रही थीं। कुछ औरतें मिर्च या उड़द सूखने के लिए छोटे-छोटे खलिहानों में फैलाने में लगी हुई थीं। कुछ औरतें पशुओं को गोशाला की तरफ हांक रही थीं। हाल ही में या छः माह पूर्व मृत्यु को प्राप्त हुए पतियों या रिश्तेदारों की याद में दहाड़ें मार-मारकर कुछ औरतें रो रही थीं। कुछ सर पर कपड़ों का गट्ठर उठाये, खाने की हांडियां लिये हुए जा रही थीं तो कुछ तरकारियां और चूक का साग बेच रही थीं, कुछ कंधे पर से लकड़ी की कांवरियां

नीचे रख देती थीं तो कुछ बोरियां ढोते हुए, थकी-मांदी, पसीने से तर-ब-तर भागी जा रही थीं। कुछ औरतें शाम की रसोई के लिए ओखल में कुछ कूटते नजर आ रही थीं तो कुछ सिर पर पानी के घड़े लिये हुए जा रही थीं।

साढ़े दस बजे पंचायत की बैठक का वक्त था, मगर जिनके पास काम-धंधा नहीं था, वे दस बजे ही मंडप की तरफ चलने लगे। उनमें कुछ ब्राह्मण और छोटे-मोटे नौकरी-पेशा वाले लोग भी थे, जो उस गांव के निवासी नहीं थे। एक तो उस दिन इतवार था और दूसरे उस झगड़े को लेकर पिछले दो दिनों से गांव भर में गरमा-गरम बहसें चल रही थी, इसलिए उनमें भी कुछ कुतूहल जागा था।

अप्पल रामुडु को वे लोग जानते तो नहीं थे मगर झगड़े के बारे में उनको पहले से ही कुछ बातें मालूम थीं।

अप्पल रामुडु—यानी उस गांव की पंचायत के हरिजन सदस्य। वह हरिजनों की जात-बिरादरी के मुख्य व्यक्ति ही नहीं थे, उम्र से भी बड़े हैं। उनके बारे में हरिजनों में तीन-चौथाई से भी अधिक लोगों की बहुत अच्छी राय है। सब मानते हैं कि हरिजनों में अगर कोई व्यक्ति बात का पक्का और ईमानदार है तो एक मात्र वही हैं। कुछ लोग उनकी कद्र इसलिए भी करते हैं कि झगड़ा-टंटा होने पर गरीबों की तरफदारी वही करते हैं।

उसी गांव के एक भूतपूर्व साहुकार से उन्होंने दो हजार का कर्जा लिया था। सूद को मिलाकर वह रकम शायद ढाई हजार तक बढ़ गयी थी।

हां, गोपन्ना को भी लोग खूब मानते हैं। वे बड़े सात्विक व्यक्ति हैं। बड़े सहनशील। एक वो दिन था, जब उनका बड़ा ठाट-बाट था, आज ये दिन हैं कि करम फूट गये हैं।

तब दोनों में बड़ा अपनापन था। अब गरीबी ने दोनों को पंचायत में लाकर खड़ा कर दिया। इस बात को लोगों को बड़ा दुःख है। यह झगड़ा तीन साल पहले ही पंचायत में आना चाहिए था। मगर अध्यक्ष श्री रामुलु नायुडु ने कहा कि मध्यस्थता से मामला निबटा देंगे। उनको मिलाकर दो और बुजुर्ग मध्यस्थ बना दिये गये।

तीनों मध्यस्थ ने मिलकर हिसाब-किताब का मुआयना किया। श्री रामुलु नायुडु को कहीं भी कोई कोर-कसर दिखाई नहीं दी। कहा--'भई, सूद की दर बड़ी अन्याय पूर्ण लग रही है।' बाकी लोगों ने कहा--'यही दर यहां चल रही है।' श्री रामुलु नायुडु ने कहा--'सरकार ने जो दर तय की है, उसी के अनुसार हिसाब लगाना चाहिए।' बाकी दोनों से कुछ कहते नहीं बना। कितनी रकम देनी होगी, इसका हिसाब लगाकर बताया गया।

गोपन्ना ने अपने नुकसान अथवा क्लेश का ख्याल न करके इसके लिए हां भर दी। मगर अप्पल रामुडु के पास उतनी रकम भी तो नहीं थी। अगर उसके पास था तो दो एकड़ तीस सेंट की जमीन का टुकड़ा। गांव में चल रही दर से हिसाब लगाकर पूरी की पूरी जमीन बेच दी जाय तभी कर्ज चुकता हो सकता है।

तब अप्पल रामुडु ने कहा--

"देखो गोपन्न बाबू! तुम मेरा मुंह देखकर नहीं, बल्कि मेरे पुरखों का ख्याल करके मेरी बातों पर जरा गौर करो। मुझे और मेरे बच्चों को मजदूर मत बनाओ। पुश्त-दर-पुश्त हमारा घर-परिवार काश्तकारों का रहा है। मेरे पोते भी अब बड़े हो रहे हैं। मुझे और मेरे बच्चों को छोड़ भी दो तो मेरे पोते तुम्हारी पाई-पाई चुका देंगे। तुम उसकी बिलकुल फिक्र मत करो। और हां, मुझे मालूम है कि तुम्हारा कर्ज एक लंबे अर्से से लटकता आ रहा है। बस! अब तीन साल की मोहलत और दे दो।"

'तीन साल बाद ही सही, चुकाने के काबिल कैसे हो जायेगा?' दोनों मध्यस्थों ने कहा। श्री रामुलु नायुडु ने जिद की कि मोहलत मिल जानी चाहिये।

वह तीन साल की मोहलत कल खतम होने जा रही है। पिछले तीन महीनों से गोपन्ना मध्यस्थ बुजुर्गों के यहां आता-जाता रहा, किंतु उसको हर वक्त यही जवाब मिलता रहा--'बस हो गया।' 'अरे इसका फैसला हो ही जायेगा' 'गांव से लौटने के बाद' 'दोपहर में देख लेंगे'... 'बस, कल सुबह हुई कि मामला तय हो गया'। बात यों टलती गयी। उस दिन भी यही बताया गया कि श्री रामुलु नायुडु गांव में नहीं हैं। सप्ताह भर की मोहलत मात्र रह गयी थी। उसकी समाप्ति के बाद कर्ज का जो रुक्का लिखवाया गया था, उसका कोई मूल्य नहीं रह जायेगा।

नायुडु विशाखापट्टनम गया हुआ था। उसके बड़े मामा को अस्पताल में भर्ती कराया गया था--पंद्रह दिन से अधिक ही हो गया था। भगवान ही जाने, क्या झूठ है, क्या सच है! दो बार खबर भिजवाई गयी थी। तब भी नायुडु ने कहलवाया था कि बस अब आया, तब आया। मगर आये कभी नहीं थे।

तब गोपन्ना ने लक्षुम नायुडु का हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा--

'बाबू लक्षुम नायुडु। तुम यह मत समझो कि मैं श्री रामुलु को दोष दे रहा हूं। वे बड़े धर्मनिष्ठ हैं। युधिष्ठिर की तरह अजातशत्रु हैं। एक ओर यह पाबंदी लगाते हैं कि न्याय के लिए किसी को भी गांव नहीं छोड़ना चाहिए और दूसरी ओर जब न्याय देने का समय आ जाता है तो वे स्वयं खिसक जाते हैं। क्या उनके या उनके मामा के और कोई नाते-रिश्तेदार नहीं थे कि उन्हें वहां रहना पड़ा? कम से कम एक जून के लिए ही सही यहां आने की फुरसत नहीं निकाल सकते थे?' अप्पल रामुडु की तरफ के लोगों की शिकायत दुहराई और अंत में कहा--

"मेरा कोई दल-बल तो पहले से नहीं था, हां, रुपये-पैसे का जोर था, वह तो अब रहा नहीं। अब जो कुछ बचा हुआ है, सो है--ईमान की ताकत! मगर वह भी अब खटाई में पड़ गया है।

अब तुम्हीं बताओ, मैं करूं भी तो क्या करूं? गांव की पाबंदी की अवहेलना करके अदालत की शरण ले लूं तो गांव के सब लोग मेरे मुंह पर थूकेंगे। न जाऊं और तुम लोगों पर भरोसा करके बैठ जाऊं तो मेरे हाथ कुछ नहीं आयेगा।"

पिछले पंद्रह साल से, जब से नायुडु गांव का मुखिया बना, गांव के लोगों ने कभी मुंह खोलकर बुजुर्गों की कोई नुक्ताचीनी नहीं की। मगर इस झगड़े में उसकी पीठ पीछे और सामने भी नरम शब्दों में ही सही लोगों ने कुछ बोलना शुरू कर दिया है।

आखिरकार लक्षुम नायुडु को मजबूर होकर आना ही पड़ा। एक श्री रामुलु नायुडु के अलावा सारे पंच आ चुके थे। दो दिन सुबह-शाम खूब बहस हुई। मगर कुछ फैसला नहीं हो पाया। फैसला नहीं हो पाया, इसका यह अर्थ नहीं कि मतभेद पैदा हो गया हो। असल में निर्णय ही नहीं हो पाया।

जाने क्यों अप्पल रामुडु चुप्पी साधे रहे, न बोले न डोले, उनके बेटों का भी यही रवैया रहा। हां, चौथा लड़का सीतारामुडु कुछ बोला। उनके दो-एक रिश्तेदार अपनी राय जाहिर कर चुके। अप्पल रामुडु का दूसरा लड़का तो सबकी हां में हां ही मिलाता रहा।

जब दस सवाल पूछे जाते तो एक का जवाब दिया जाता। दस बातों का जवाब सिर्फ एक बात में देते।

उनके बर्ताव का ढंग उन मछलियों की तरह लग रहा था, जो कम पानी वाले पोखर में हों। वे न हाथ की पकड़ में आतीं, न लट्ठ के सहारे वश में की जा सकतीं। छोड़-छाड़कर जायें भी कैसे? पूरे बदन में कीचड़ जो लग गया था।

जब सवाल किया जाता कि कर्ज का बकाया है या नहीं तो जवाब मिलता--जब आप सब लोग कह रहे हैं तो न कैसे हो सकता है।

'चुकायेंगे या नहीं?'

इसके जवाब में कहते--'यदि हम न कह दें तो आप छोड़ेंगे थोड़े ही?'

'तो फिर अदा कर दो न!'

उत्तर होता, 'हमारे पास है ही क्या?'

'अच्छा! वही दे दो जो तुम्हारे पास है।'

जवाब मिलता, 'फिर हमारा जीवन गुजरेगा कैसे?'

'यह बात उस वक्त सोचने की थी जब कर्ज लिया गया था!'

जवाब में कहते, 'तब बहुत छोटे थे, इतनी सोच-समझ नहीं थी।'

'जिसमें सोच-समझ हो वे ही लोग कर्ज चुकायेंगे?'

इस सवाल का उत्तर था, 'हां हां! बेशक। चुकवा लें।'

पंचों को जैसे-जैसे उकताया जाने लगा, उनमें क्रोध और दुराग्रह अधिक बढ़ने लगा। फिर भी उन्होंने अपने को संभाल लिया था।

''हां, यह भी सच है। आगे अपने जीवन का क्या होगा, इस बात का डर मन में आना सहज ही है। मगर जब वक्त और भाग्य साथ न दे तो कोई कुछ नहीं कर सकता। महाराज हरिश्चंद्र जैसे व्यक्ति को श्मशान घाट की रखवाली करनी पड़ी थी। आखिर क्यों? कर्ज चुकाने के लिए ही तो था!

"...हां यह काम करने में तुम लोगों को मान-अभिमान आड़े आये तो तुम्हारे लड़के जो हैं, अभी वे छोटे हैं। चारों के चारों रईस नायुडु घराने के चार घरों में नौकर नियुक्त हो जायें तो जिंदगी जैसे-तैसे कट ही जायेगी। हम रईस नायुडु लोग सब-के-सब काम छोटा हो या बड़ा, सबसे पहले तुम लोगों के यहां खबर भिजवा देते हैं। दूसरों के यहां पीछे। यह सब कुछ हम क्यों बता रहे हैं, यह तुम लोग खूब सोच-विचार लेना। जान है तो जहान है। चार लोगों की शाबाशी से आदमी की इज्जत बढ़ती है। खाने-पीने की कोई कमी न रहेगी। जहां दुत्कार हो वहां जीना मुश्किल हो जायेगा।"

पटवारी पक्ष के सब नायुडु भी अपनी तरफ से जो कुछ कहना चाहिए था, कह चुके थे।

"अरे! सुनो लड़को! जब मान-मर्यादा का लोप हो जाता है तो जीना मुश्किल हो जाता है,जब नायुडु लोग एकजुट होकर बाइज्जत इतना कर रहे हैं तो भलाई इसी में है कि चट से इसे कुबूल करो। यह प्रस्ताव कई मायनों में हितकर है।अगर नहीं स्वीकारेंगे तो उनकी नजरों में तुम लोग हल्के हो जाओगे। फिर उसके बाद जो होना है वही होगा। और हां, अगर इसे मान जाओगे तो लगे हाथ हम एक काम की बात बता देंगे। कुंए वाले पोखर के उस पार पोति नायुडु ने पांच एकड़ बंजर भूमि में खेती करना शुरू कर दिया है। उससे थोड़ा आगे पांच एकड़ जमीन और है, जो खाली पड़ी है। पोति नायुडु धौंस देता रहता है कि वह पांच एकड़ जमीन भी उसके ही नाम पर हुई है। आवेदन पत्र उसने तो जरूर दिया था, मगर वह मंजूर नहीं हुआ था। वह एक अलग कहानी है। कुछ भी हो, उसे मनाने की जिम्मेदारी पंचों की है। तुम लोग उसे जोत लेना। पट्टा तुम लोगों के नाम हो जायेगा। यह बात हम पर छोड़ दो। पोति नायुडु अकेला आदमी होने की वजह से खेती के काम में कुछ तेजी नहीं ला पा रहा है। हमें पूरा यकीन है कि तुम लोग उससे सोना उपजाओगे, सोना, इसमें कोई संदेह नहीं है।

मगर रामुडु के लड़कों को ये बातें जैसे कुछ पसंद नहीं आयी।

"हम लोगों के मुंह का कौर छीनकर हमारे बच्चों का मुंह बंद करना चाहते हैं। या तो उनकी आह हमें लग जायेगी या हमारी उनको लग जायेगी। फिर उसके बाद जब हमारे बीच एक दूसरे से लड़ने-भिड़ने की नौबत आ जायेगी तो उसका निपटारा करने के लिए हमें आपके सामने घुटने टेकने पड़ेंगे।" बोडिगाडु ने कहा।

"बाबूजी! उस बंजर में सोना उपजेगा या चांदी, यह बात रहने दीजिये। मगर असल बात तो यह है कि उसकी मरम्मत के लिए पैसा हमारे पास नहीं है। फिर उसके लिए कर्ज लेना पड़ेगा। जिस दिन वह सोना उपजेगा, वह कर्ज सूद के साथ बहुत अधिक हो जायेगा। मेहनत-मजदूरी करेंगे हम और उसका फायदा उठायेंगे कर्जदार। आप बुरा न मानें, एक विनती है मेरी। वह जो बंजर है, उसे गोपन्न बाबू के ही हवाले कर दीजिये। कर्ज के चुकाये जाने तक हम उनके यहां मेहनत-मजदूरी करते रहेंगे।" सीतारामुडु ने कहा।

फैसला करने के लिए जो पंच वहां आये थे, वे समझ गये कि यह झगड़ा सुलझने वाला नहीं है। अगर पंद्रह साल पहले ऐसा हुआ होता तो इसे सुलझाने में इतनी देर शायद ही लगती। श्रीरामुलु नायुडु ने गुड़ का गोबर बना दिया। वैसे वे हर बात पर शांति की दुहाई देते। कहते--जब विपक्ष के लोगों को समझाने में तुम सफलता नहीं पाते हो तो तुम उन पर अपना गुस्सा उतारने के लिए उतारू हो जाते हो, जिससे कि मामला और बिगड़ जाता है। लोग जो गलतियां करते हैं, उन्हें सुधारा जा सकता है। मगर स्वयं हमीं लोग अगर गलती का रास्ता अपनायें तो इसका मतलब कि हमें भी कुछ नहीं सूझता और कोई रास्ता नजर नहीं आता।

जब फैसला मुलतवी हो गया और पंच उठकर जाने लगे तो बीच रास्ते में लक्षुम नायुडु ने अपना गुस्सा उगल दिया—

"इसका सारा दोष मेरे जीजा जी का है। बढ़-चढ़कर बतियाना उनको बहुत आता है। वे चाहते हैं कि हरेक को ऐसे ही वाक्-पटुता दिखाकर जीवन-यापन करना चाहिए। देखो न उन ससुरों को, वे बढ़-चढ़कर इतनी बातें करने की हिम्मत कहां से जुटा पाये...?" अपनी आंखों से आग की चिनगारियां बरसाते हुए वह बोला। बगल में और आगे चलने वालों ने नायुडु की तरफ देखा। साहूकार सूर्यम उसके कंधे पर हाथ रखकर कुछ दूर तक साथ चलते रहे। फिर उसके बाद अपना हाथ हटा लिया। इसका यह मतलब नहीं था कि जल्दबाजी ठीक नहीं, बल्कि यह था कि यह ठीक जगह नहीं।

यह सब कुछ इसके पिछले दिन घट चुका था। दोपहर को सूर्यम जी विशाखापट्टनम के लिए रवाना हो गये थे।

साढ़े दस बजे पंचायत का मंडप लोगों से खचाखच भरा था।

वह मंडप गांव के बीचोंबीच गांव के उत्तर में निर्मित मंदिर के सामने इस तरह से बनाया गया था कि अगर मंदिर के सारे दरवाजे खोल दिये जायं तो भगवान के दर्शन हो जायं। उत्तर की दिशा में दीवार है। मंदिर के चारों ओर खुली जगह है।

मंडप के मध्य भाग में पंच बैठे थे। लोग-बाग उनकी चारों ओर मंडप की सीढ़ियों पर, मंडप की छाया में, मंडप के सामने, उसके आसपास, दूर बने चबूतरों पर, छज्जे के नीचे की छाया में, चाय की दुकानों में, दुकानों के सामने के आशियाने में भरे हुए थे। बाकी सब लोग या तो बैठे हुए थे या खड़े थे या किसी के सहारे लटक रहे थे। सब के सब सभा के आरंभ की प्रतीक्षा में थे।

श्री रामुलु नायुडु और सूर्यम जी सुबह की बस से आये थे, यह खबर गांव में मिनटों में फैल गयी थी। इसीलिए उस दिन इतने लोग वहां जमा हो गये थे। इससे पहले कभी इतने लोग नहीं आये थे।

नायुडु ठीक वक्त पर पहुंचे। उन्हें एक मिनट की भी देरी नहीं हुई। कुछ लोगों ने चबूतरों से उठकर नमस्कार किया। जो लोग चुरुट पी रहे थे, उनको पीछे छिपा लिया।

मंडप में बैठे हुए पंचों की तरफ मुखातिब होकर पहले स्वयं मुस्कुराते हुए नमस्कार किया और उनके प्रति नमस्कार को स्वीकारते हुए नायुडु ने जल्दी-जल्दी मंडप में प्रवेश किया।

जो लोग सिर्फ नायुडु का नाम मात्र सुन चुके हों, कभी देखने का मौका न मिला हो, वे शायद यह समझ बैठे कि वे एक हट्टे-कट्टे व्यक्ति रहे होंगे। वे एक पतले से छः फुट लंबे कद वाले व्यक्ति हैं, जो हमेशा खुले गले वाला महीन सफेद कुर्ता पहनते हैं। घुंघराले बाल हैं। मुस्कुराता चेहरा है। रंग सांवला है।

नायुडु गंवई नाते-रिश्तेदारों और धराऊ नामों से सब लोगों को नमस्कार करते हुए अपनी निर्दिष्ट जगह पर जाकर आसीन हो गये। वे आसपास बैठे हुए लोगों की बातें सुनते हुए, और उनकी बातों का उत्तर देते हुए, वहां एकत्रित जन समूह को निहारने में लग गये।

गांव के जिन प्रमुख व्यक्तियों को वहां आना था, वे सब वहां उपस्थित थे।

लक्षुम नायुडु और सूर्यम जी के दायें-बायें बैठे हुए थे। जो पंच शेष रह गये थे, वे दोनों तरफ बंटकर बैठ गये। पटेल, पटवारी और राघवय्या पंतुलु के बड़े लड़के, जो नायुडु के पूर्व गांव की बागडोर सम्हालते रहे, हाजिर थे। अभी अभी अपनी पहचान बनाने की कोशिश में लगे हुए महेश, पापय्या और साथ ही मुसलय्या भी--जो कि काफी समय पूर्व ही बड़े व्यक्तियों की श्रेणी में सम्मिलित हो गये थे--आ चुके थे।

हर गली से, हर कुल के, हर तरह के पेशेवाले और हर वर्ग के लोग आ गये थे और बड़े-बड़े लड़ाई-झगड़ों के मौके पर विशेष रूप से बुलाये जाने वाले सभी व्यक्ति भी वहां पहुंच चुके थे।

नायुडु की नजरें अप्पल रामुडु पर टिकी रहीं। वह मंडप की सीढ़ियों के सामने—हमेशा बैठने की जगह से थोड़ा परे बैठा था। उम्र सत्तर से ऊपर रही होगी। मगर मिट्टी को चीरकर जिंदगी गुजारने वाला आदमी होने की वजह से बुढ़ापा अपना अधिकार न उसके सिर के बालों पर जमा पाया, न उसके शरीर पर ही। हां उसके शरीर में कुछ झुर्रियां जरूर पड़ी थीं। फिर भी धूप की सुनहली कांति में उसका शरीर चमकने लगता है। वह एक बड़ा गमछा पहने हुआ था और एक मैला-सा कपड़ा कंधे पर डाले हुए था।

उससे थोड़ी ही दूरी पर पचास से बीस वर्ष के बीच के पुत्र, पोते, नाते-रिश्तेदार, बस्तीवालों की एक भीड़ बनाकर इधर-उधर बैठे हुए थे।

सीतारामुडु उस सब लोगों के पीछे बैठा हुआ था। उसकी एक तरफ उसके बड़े भाई का बड़ा लड़का चिन्नप्पल रामुडु नजदीक में बैठा हुआ था। दूसरी तरफ दूसरा भाई बोडिगाडु।

उन तीनों के साथ उनकी औरतें थीं। वे सब अपने बीच में छोटे-छोटे बच्चों को रखकर धूप में खड़ी थीं। धूप की सुनहली कांति जब काली मूर्तियों पर चमक रही थी, तब वे खुले में उपासना की जाने वाली ग्राम देवताओं की मूर्तियों की तरह दिखाई दे रही थीं।

मंडप में बैठे हुए गोपन्ना के साथ कोई भी व्यक्ति नहीं था। उनके चारों बेटे रोजी-रोटी

की तलाश में भिन्न-भिन्न प्रदेश चले गये थे। एक अनाथ पुत्री और उसके पांच बच्चों के साथ गोपन्ना अकेले उस गांव में रहने लगा था।

श्री रामुलु नायुडु आजू-बाजूवालों की सहमति लेकर, अपना गला ऊंचा करके बोला--

''सभी में उपस्थित श्रोताओं से मेरी प्रार्थना है कि आप शांत रहें। मैं अपना भाषण आरंभ करने के पहले दो बातें आप को बताना चाहता हूं।''

सभा में बोलने के नायुडु के तौर तरीके नये लोगों को कुछ अजीब-सा लग सकता है। थोड़ी देर तक नीचे की तरफ देखकर, जैसे संकोच कर रहा हो, फिर सिर ऊपर उठाकर हंसते हुए बोला--

''मैं एक बात से स्वयं दुखी हूं और मैं नहीं जानता कि क्या मैं आपको भी दुख पहुंचा रहा हूं। शायद इसमें मेरी भूल हो सकती है, या जिन्होंने समाचार पहुंचाया, उन्होंने कुछ गलत समझा हो। जो भी हो, सभा में मेरी गैरहाजिरी को लेकर कुछ गलतफहमियां फैल गयी हैं।

इसका कुछ सबूत है अथवा नहीं, इस पचड़े में मैं अब पड़ना नहीं चाहता, पर आप सब लोगों से इसके लिए क्षमा जरूर चाहता हूं।''

नायुडु ने मुस्कुराते हुए हाथ जोड़े। मुस्कुराते हुए ही वे बोले भी। मगर लोग एकदम चौंक पड़े।

किसी ने कहा, 'न न, ऐसी कोई बात नहीं।'

'अरे! किसी ने बात ऐसे ही उड़ायी होगी' दूसरे ने कहा।

एक ने कहा, 'ऐसी बातों की परवाह नहीं करनी चाहिए।'

'वह कोई बेवकूफ होगा जो ऐसा बोला हो'--यों लोगों ने नायुडु को बताया।

नायुडु ने सबकी सुनीं। फिर भी वह बोला--

'इसकी एक वजह है। वह मेरे निजी जीवन से संबंधित है। इस सभा में उसका विवरण नहीं दे सकता...।'

वैसे नायुडु अपने निजी जीवन के बारे में आम सभाओं में जिक्र करने वाले व्यक्तियों में नहीं थे।

''हर व्यक्ति की सामाजिक जिम्मेदारी के अलावा अपना एक निजी जीवन भी होता है। इन दोनों क्षेत्रों से संबंधित कुछ कार्य कभी-कभी एक ही समय में संपन्न करने पड़ते हैं। कौन-सा कार्य पहले, कौन-सा पीछे किया जाय, इसका निर्णय करना मुश्किल हो जाता है कई बार।

ऐसे संघर्ष के क्षणों में--यानी ऐसे असमंजस की स्थिति में--किसको प्रधानता देनी चाहिए, इसके बारे में हमारे पूर्वज बहुत पहले ही एक निर्णय पर पहुंच चुके थे। 'जनता' या 'सीताजी'? तुम किसको चाहते हो? जब श्रीरामचन्द्रजी से पूछा गया तो उन्होंने झट से जवाब दे दिया। किंतु श्रीरामुलु नायुडु सोलह आना मानव मात्र हैं। आपको क्षमा करनी

होगी।''--धीमी आवाज में वह बोला।

लोगों के मन में जल्दबाजी में नतीजे पर पहुंचने का पछतावा होने लगा।

उस गांव में ऐसा कोई नहीं मिलेगा जो नायुडु के जीवन से परिचित न हो।

एक अति साधारण परिवार में उनका जन्म हुआ। उनकी अपेक्षा, उनके मामा कुछ सम्पन्न परिवार के थे। जब उसकी उम्र आठ वर्ष की थी, तब उनके बड़े मामा, जो अब अस्वस्थ हैं, की दो साल की बेटी से शादी हो गयी थी। उसके बाद उनके मामा बड़े संपन्न हो गये।

नायुडु की प्राथमिक शिक्षा भी पूरी न हो पायी कि उसे शहर ले जाया गया। हाईस्कूल की पढ़ाई के बाद कालेज में दाखिल हो गया। बी.ए. की पढ़ाई करते-करते देश-सेवा के फेर में पड़ गया। पढ़ाई छूट गयी।

उन दिनों इस बात को लेकर दोनों परिवारों के बीच में कुछ दरार पड़ गयी, लोगों ने कहा, किंतु औरतों की लाग-लपट की वजह से इसमें कोई आंच न आयी। वे नाते-रिश्ते ऐसे ही कायम रहे।

अब भी उन दोनों परिवारों के बीच् कुछ घपला जरूर है। नायुडु को संसद सदस्य या कम से कम विधान सभा के सदस्य के रूप में उनके सभी मामा देखना चाहते हैं। नायुडु कहता है--''मुझे कोई पद नहीं चाहिए, यदि मैं कुछ कर सकूं तो अपने गांव की सेवा करूंगा। यही मेरा लक्ष्य है।''

इस नये संघर्ष के कारण फिर कुछ समय तक बोलना-चालना बंद हो गया।

फिर दोनों परिवारों से बोल-चाल शुरू हुआ। इतने में यह एक शामत आयी। नायुडु जा नहीं पाये। लोग-बाग समझ नहीं पाये। यह लोगों का ही दोष था।

नायुडु बोलता गया--''इस संदर्भ में एक और बात प्रकाश में आयी हैं। इस पर हम सबको खूब सोचना चाहिए। इसको याद रखकर हमें आगे निर्णय लेना होगा।

अगर मात्र एक व्यक्ति के अनुपस्थित रहने के कारण संस्था की तरफ से चलाये जाने वाले कार्य एकदम स्थगित हो जाय, तो यह एक पेचीदा मामला है। अगर आप यह समझें या लोगों की यही धारणा हो कि यहां जो कार्यक्रम चल रहा है उसका पूरा उत्तरदायित्व श्री रामुलु नायुडु के कंधों पर ही है तो इससे मेरे दिल को बड़ी ठेस पहुंचेगी। पिछले दस-पंद्रह वर्षों की अवधि में कोई भी काम मैंने अकेले नहीं किया। यह जानकर मुझे बहुत दुख हो रहा है कि आप लोग अपनी जिम्मेदारी ठीक तरह से नहीं निभा रहे हैं। इसके लिए दोष किसको दूं, यह मेरी समझ मे नहीं आ रहा है। शायद इसमें मेरा ही दोष हो। इसके लिए मेरा मन बहुत विकल है।

नायुडु के मुंह पर विकलता के चिह्न स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। नेतृत्व के संबंध में नायुडु के आदर्श बहुत ऊंचे थे। इस संबंध में महात्मा गांधी के उपदेशों का गहरा प्रभाव वचपन में ही उसके मन पर पड़ा था। हाई स्कूल में जब पढ़ रहा था तब 'अपना गांव--माता की

ममता' शीर्षक पर नायुडु ने एक लेख लिखा था, जिस पर उसको सोने का पदक प्राप्त हुआ था। वह पहली कांति रेखा थी, जो उसके हृदय में उस दिन प्रस्फुटित हुई थी।

कालेज में भर्ती होने के बाद नायुडु ने उसे एक ज्योति के रूप में अपने में प्रतिष्ठित कर लिया था। उसके बाद लॉ कालेज में दाखिला लिया।

सन् उन्नीस सौ सैंतालीस की बात है। लॉ कालेज की पत्रिका में 'भारत वर्ष--उन्नीस सौ साठ' शीर्षक से नायुडु का लेख छपा। यद्यपि उसका प्रभाव पाठकों पर लेखक की तारीफ करने तक ही सीमित रह गया था, फिर भी सृजनात्मक लेखक का उस पर जो प्रभाव पड़ा, उसने उसे अपने गांव तक ले जाकर छोड़ दिया। उन दिनों उसी की तरह देशभक्ति के जोश में आकर उसके साथी युवक जो निकले थे, वे बड़े इत्मिनान से कानून की परीक्षाएं पास करके आज विधान सभाओं एवं मंत्रिमंडलों में अपने को सुशोभित कर रहे हैं।

नेतृत्व के बारे में महात्मा गांधी ने जो कुछ कहा था, उसकी विशद व्याख्या करते हुए नायुडु मूल विषय पर आकर बोले--"यह झगड़ा आज का नहीं, बहुत पुराना है। मगर आज यह विशेष प्रधानता प्राप्त कर गया है। इस बात का प्रमाण यही है कि इसके पहले कभी भी किसी भी झगड़े के संदर्भ में इतने लोग नहीं आये थे, जितने आज आये हैं।

इस झगड़े का समाचार आसपास के गांवों में भी फैल गया है। तो फिर हमें न्याय करने में पहले से अधिक सतर्क रहना पड़ेगा। ऐसा नहीं कि हम पहले सतर्क नहीं थे। मेरा अभिप्राय सिर्फ इतना है कि किसी की आलोचना करने की गुंजाइश इसमें न रहे।"

उसके बाद--

"हमारी चारों ओर बैठे हुए इन छोटे-छोटे बच्चों की तरफ देखिये। (उन बच्चों की तरफ दिखाते हुए) इस झगड़े को हम कैसे सुलझाने जा रहे हैं, यह जानने के लिए कुतूहलवश वे भी यहां आये हुए हैं। उनकी समझ में कुछ नहीं आयेगा, यह अलग बात है, मगर हमें याद रखना चाहिए कि ये ही बच्चे अगली पीढ़ी के निर्णायक हैं। आज हम जो फैसला देंगे, वह उनके लिए बुनियाद का काम करेगा। इसलिए इस बात को भी याद रखिये।"

'भले ही बात आखिरी हो, मगर छोटी नहीं' यों कहते हुए एक बात उन्होंने और बतायी, "हम बारह वर्ष पूर्व इस पवित्र मंदिर के सामने, मंदिर से भी पवित्र इस मंडप के उद्घाटन के अवसर पर एक प्रतिज्ञा ले चुके थे...। 'अब यह मंडप ही हमारा न्याय मंडप है'। जब तक यह मंडप रहेगा तब तक हमें न्याय के लिए दूसरे गांव में नहीं जाना चाहिए। जिस रोज इस मंडप में न्याय न मिलने के कारण इस गांव के निवासी दूसरे गांव में जायेंगे, उस रोज हम उन्हीं हाथों से इसे गिरा देंगे, जिन हाथों से हमने इसका निर्माण किया था।"

"इस प्रतिज्ञा को अच्छी तरह याद रखिये। आज अगर सुंदरपालेम ने दूसरे गांवों की तुलना में अपनी एक खास जगह बना ली है तो इसका मुख्य कारण है—हमारी एकता। मंत्रीगण और मुख्यमंत्री अगर लोगों से भेंट करने के लिए यहां आये थे तो इसका एकमात्र कारण था--हम लोगों के काम करने के तौर-तरीके और आदर्शों की पवित्रता। होड़ा-होड़ी

में भाग लेकर हाथ जोड़े, बड़े विनम्रभाव से आश्रित होना, फिर चालें चलना, यह सब हमें पसंद नहीं, अन्यथा आदर्श पंचायत का पुरस्कार हमें भी बड़ी आसानी से मिल जाता।

हां, हमारा आदर्श हमारे कार्यों से प्रकट हो। पुरस्कार प्राप्त करने के या न प्राप्त कर सकने के अनेक कारण होते हैं। अपने इस प्रतिष्ठात्मक दृष्टिकोण को भी ध्यान में रखकर इस मामले का फैसला हम करेंगे--यह मेरी प्रार्थना है।"

नायुडु ने अपना भाषण समाप्त किया।

जब भी श्री रामुलु नायुडु अपना भाषण समाप्त करके बैठ जाते हैं तो सबके फेफड़ों में से एक गहरी सांस निकलती है। तब तक प्रतिमा की तरह मूक जनता में जैसे एकदम जान आ गयी हो, भीड़ हिलने-डुलने लगी।

उसके बाद अपना भाषण शुरू करने के लिए गोपन्ना खड़े हो गये।

लोग-बाग अपने आप में धीमे स्वर में बातें करने में लग गये।

सच है, इस झगड़े को लेकर आसपास के गांवों में भी चर्चा होने लगी है। और यह भी सच है कि वहीं से इस झगड़े को समर्थन प्राप्त होने लगा और नायुडु पर नाहक शंकाएं की जाने लगी हैं। अफवाहें यहां तक उड़ने लगीं कि अगर फैसला करना नायुडु के हाथ में हो तो गोपन्ना को शायद इसमें न्याय न मिले। ऐसा इसलिए कि एक तो अप्पल रामुडु पंचायत के सदस्यों में से एक हैं और दूसरे पहले से ही नायुडु और उसके बीच में बड़ी दोस्ती है। यद्यपि लक्षुम नायुडु ने कानून का अध्ययन नहीं किया, फिर भी कचहरियों के मामले-मुकदमों से वे अच्छी तरह परिचित हैं। बाप-दादा के जमाने से इस गांव में ये लोग न्याय देने वाले व्यक्तियों में गिने जाते हैं। लोगों का अनुमान है कि इस झगड़े के कारण दोनों में मतभेद हो जाना निश्चित है।

वैसे एक लंबे अर्से से आसपास के गांवों को इस गांव से बड़ी चिढ़ थी। उन गांववालों का कहना था--"एक समय था जब उस गांव में भूत नाचते थे। दिन दहाड़े लोगों की हत्याएं होती थीं। कोई मिनकता तक नहीं था। अपने को बचाये रखने के लिए एक बात पर अड़े रहते थे। सरकारी अफसर उस अलग-थलग से गांव में अकेले जाने से डरते थे। अब वहीं गांव अफसरों के लिए लाड़ला बन गया है। अफ़सर रात-दिन जीप और मोटरों में आते-जाते नजर आते हैं। ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत जो भी योजना घोषित की जाती है, सबसे पहले उस गांव को प्राथमिकता दी जाती है। उसके बाद ही अन्य गांवों की बात सोची जाती है।"

वे लोग इसी तरह कुढ़ते थे, किंतु यह कभी नहीं सोचते थे कि उस हद तक पहुंचने के लिए क्या-क्या यज्ञ किये गये थे वहां और क्या-क्या किये जा रहे हैं।

पंद्रह वर्ष पूर्व जब नायुडु ने उस गांव में कदम रखा था, तब आस-पास के सभी गांवों की तरह वहां भी जड़ता थी, कोई गतिविधि नहीं थी।

पूरे गांव में सिर्फ दो ही पंसारियों की दुकानें थीं। रात को तेल के दिये जलते थे। जनता की स्थिति बड़ी दयनीय थी। मैले-चीकट फटे कपड़े पहने, टूटे-फूटे घरों में रहते बुढ़ाते-बूढ़े जैसे-तैसे जिंदगी गुजार रहे थे। वे सभ्यता से दूर उस दूरदराज कोने में पड़े हुए थे।

ऐसी स्थिति में नायुडु ने गांव में प्रवेश किया। तब उनकी उम्र पच्चीस वर्ष की भी नहीं थी। तब गांव में एकता भी थी और अनैक्य भी कुछ अधिक ही था। लोग मुसीबत के वक्त एक हो जाया करते थे। मगर आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एकजुट नहीं हो पाते थे। अपनी खिचड़ी अलग पकाना, जैसे उस समय का सिद्धांत था।

हां, ऐसे लोग भी थे, जो नायुडु की बातें और काम के तौर-तरीके देख-सुनकर पीठ पीछे और आमने-सामने भी हंसते और मजाक उड़ाते थे। मगर जब लोगों ने सुना कि उसी व्यक्ति ने सूर्यम जी से एक ही बार में बीस हजार रुपये का चंदा वसूल किया और वह रकम भी हाईस्कूल की खातिर, तो लोग एकदम चौंक उठे।

उन दिनों सूर्यम जी पैसे देने के मामले में बड़े कंजूस थे। नकघिसाई करके जो माया उन्होंने जोड़ी थी, उसे कठौतों और कंडालों में छिपाकर रखते थे। उसमें से एक कानी कौड़ी निकालने पर उनकी जान पर आ जाती थी। न जाने ऐसे व्यक्ति से क्या-क्या बतियाकर उन्हें समझाया-बुझाया। लोगों को यह यकीन हो गया कि उनकी बातों में कोई जादू है! जादू!

उसके बाद सब लोगों ने उनकी बातें गौर से सुनना आरंभ कर दिया।

नायुडु ने कहा--'सब अनर्थों का मूल है : अज्ञानता। अतः सबसे पहले हाईस्कूल का खुल जाना जरूरी है।'

लोगों को भले ही यह बात ठीक समझ में नहीं आयी, फिर भी लोगों ने वैसा ही किया, जैसा नायुडु ने कहा। चूंकि गांव में हाईस्कूल है, इसलिए सड़क की भी जरूरत है। सरकार इसकी आवश्यकता पर भी राजी हो गयी।

एक कामयाबी पर दूसरी कामयाबी की बुनियाद खड़ी करके प्रगति के जितने कार्यक्रम हाथ में लिये, उनको पूरे करते हुए गांव को आगे की ओर ले जाया गया। आज अगर वह गांव दूसरे गांवों की ईर्ष्या का पात्र बना तो इसमें कोई अचरज की बात नहीं थी। दफ्तरों के अलावा वहां तीन सहकारी संस्थाओं, कपड़े की चार दुकानों की स्थापना हो चुकी। वहां आधे दर्जन दरजियों के लिए पूरे साल का काम रहता था। गोपन्ना अपनी व्यथा-कथा जारी रखते हुए बोलता जा रहा था--

''--उस आघात से मेरे व्यापार को बहुत बड़ी क्षति हुई थी। अकेले मुझे ही नहीं, बहुतों को नुकसान पहुंचा। हां, सबसे अधिक नुकसान मुझे हुआ था। कुछ देर के लिए मौन रहा, जैसे यह सोचकर कि कहूं या न कहूं और वह फिर लोगों की तरफ देखते हुए बोला--'अपना सोना खोटा तो परखेया का क्या दोष' वाली बात है। जब अपनी बिरादरी वालों ने ही--यानी

मेरे अपने लड़कों ने मुझे चकमा दिया था, जब वे भांप गये थे कि व्यापार में कुछ गड़बड़ है तो चुपचाप जिसको जो हाथ में आया, उसे हथिया लिया गया। इससे हमारी जो कुछ मान-मर्यादा थी, वह सारी-की-सारी मिट्टी में मिल गयी। लोगों में यह चर्चा का विषय बन गया।

उनकी इच्छा थी कि बंटवारा हो जाय। मगर बांटने के लिए रह ही क्या गया था। इसमें भी एक कुटिल चाल चली गयी। उन सारे कर्जों को वे अपने सिर पर ले चुके थे, जिन्हें आसानी से वसूल किया जा सकता था। मेरे और मेरे बड़े लड़के के नाम पर ऐसे कर्ज छोड़ गये थे, जिन्हें वसूल करना आफत मोल लेना था। जिन जिनका बकाया है उनमें से ऐसे को उन लोगों ने चुना, जिनको कि वे बड़ी आसानी से डुबा सकते थे या उनका पूरा कर्ज माफ किया जा सकता था। जो कर्ज जोर-जबर्दस्ती से वसूल करने पर ही वापिस मिल सकते थे, उन्हें हम दोनों को सुपुर्द कर दिया गया।

इतनी घपलेबाजी के बावजूद बची-खुची नेक-नियति और मित्रों की भलमनसाहत के कारण जिंदगी गुजरती रही। इन पांचेक वर्षों में जिन से पैसा मिलना था, उनसे वसूल करके, जिनको अदा करना था, अदा करके हम बेबाक हो चुके।"

उसके बाद लड़के ने कहा—'मैं यहां रह नहीं सकूंगा, पश्चिम चला जाऊंगा।'

मैंने कहा—"ठीक है। ओलती तले का भूत सत्तर पुरखों का नाम जाने—यह कहावत मशहूर है ही। बेशक चले जाओ।"

भाइयो! मैं यह सब कुछ इसलिए बता रहा हूं कि जहां तक दूसरों को देने की बात थी, पाई-पाई चुका दी। सूद में भी मैंने किसी से रियायत नहीं मांगी। मगर जहां से मुझे सूद मिलने की गुंजाइश थी, उसे अधर्म का सूद कहा गया। सोचा, जो भी मिले, वही सही। उसके लिए भी कुछ मोहलत मांगी गयी थी। मैंने सहर्ष स्वीकार की। अब वह मोहलत भी समाप्त हो चुकी है। अब आप जैसा न्याय करें मुझे स्वीकार्य है। भगवान की दया है। और आप लोग जो भी दिला देंगे, उसे भगवान का प्रसाद समझूंगा। वे बैठने जा रहे थे कि कुछ और याद आया। फिर खड़े हो गये, "एक बात है, अभी आपने कहा कि जिस रोज न्याय न मिलने के कारण किसी ने बाहर कदम रखा, उस रोज इस मंडप को गिरा देंगे। मगर मुझसे ऐसा काम कभी नहीं होगा।"

"हां, यह बात सच है कि कल परसों तक, या यों कहूं कि आधे घंटे पहले तक मेरा इरादा था कि यदि मामला घपले में पड़ जाय, तो कोर्ट जाया जाय। जब आपके मुंह से मंडप की बात सुनी तो मैंने अपना इरादा बदल लिया है।"

"यदि भूख-प्यास के मारे अपनी बेटी के साथ मुझे मरना भी पड़े तो मैं खुशी-खुशी मर जाऊंगा। मगर यह आरोप मैं कभी नहीं लगाऊंगा कि यहां मुझे न्याय न मिला। मेरी इच्छा है कि यह न्याय मंडप ज्यों का त्यों सदा बना रहे और भले ही यहां मेरे नातियों को न्याय न मिले, मगर अन्य लोगों को तो बराबर न्याय मिलता रहे।" कहते हुए गोपन्ना

बैठ गया।

अंत में गोपन्ना ने जो बात कही थी, उसने वहां बैठे हुए लोगों के दिल एकदम पसीज उठे। जिन लोगों ने पहली बार उसकी सहनशीलता और शालीनता देखी, उन्होंने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की, 'अच्छा! यही कारण था कि लोग इनको बहुत चाहते थे।'

उसके बाद हरेक व्यक्ति अप्पल रामुडु की तरफ देखने लगे। सर नीचे किए हुए अप्पल रामुडु बैठा हुआ था। एकदम गुमसुम। सभा में बैठे हुए लोगों ने इधर-उधर ताक-झांककर श्री रामुलु पर अपनी दृष्टि टिका दी।

नायुडु समझ गया। पूछा--'कहो जी, अप्पल रामुडु! तुमको कुछ कहना है?'

हालांकि अप्पल रामुडु की आयु सत्तर वर्ष से ऊपर की थी फिर भी नायुडु के अलावा सभी उसे एक वचन में ही संबोधित करते थे। नायुडु उसके नाम के साथ 'जी' जरूर जोड़ते।

अप्पल रामुडु ने कोई उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर के बाद असिरि नायुडु ने कहा, ''देख रामुडु! अपनी तरफ से जो भी बोलना हो, बोल दो।'' उसका सिर हिल रहा था। असिरि नायुडु अस्सी वर्ष का वृद्ध है। कभी किसी सभा में नहीं गया था। अप्पल रामुडु और उसके खेत आजू-वाजू में हैं। फिर भी रामुडु नहीं उठा। थोड़ी देर बाद वहां खड़े हुए लोगों में से किसी ने कहा, ''अरे भाई! हम लोगों को यहां कितनी देर और खड़ा रखेंगे? अटकेगा सो भटकेगा। हां या ना बोल दो। कर्ज देना है या नहीं देना है। टका-सा जवाब दे दिया। हो गया। बला टली। अगर देना है तो बोलो, इतना दे सकूंगा। नहीं तो बोल दो, इतना नहीं दे सकूंगा या साफ इनकार कर दो, हम कुछ नहीं दे पायेंगे; जो करना हो, सो कर लेना। चुपचाप बैठे रहना ठीक नहीं। फैसला करने के लिए जो यहां पधारे हैं उनको और हमको भी जो यहां प्रेक्षक बनकर आये हैं, यह सब अच्छा नहीं लग रहा।''

उसकी बातों में सहानुभूति और निष्ठुरता एक साथ थी। इस पर जब न रामुडु कुछ बोला, न उसके बेटे, तो झुंझलाते हुए अन्नमय्या--जो लक्षुम नायुडु का साला और श्री रामुलु नायुडु के दूर का रिश्तेदार था--भीड़ को चीरते हुए वहां आया। कंधे पर रखे गमछे को हवा में इस तरह झुलाते हुए जैसे सभा एवं सभा में बैठे हुए प्रतिष्ठित पंचों को झुला रहा हो, बोला। जब वह बोलने लगा तो ऐसा लग रहा था मानो वह अपनी सभी अंगों से अभिनय कर रहा हो। चेहरे के सारे अंगों से निकला हुआ जोश फुफकार रहा हो।

''कहावत है--'लाचार की पंचैती मूर्ख करे' यह मामला भी ऐसा ही है। सारा समय तिलक लगाने में ही लगा दिया। 'छोटा मुंह बड़ा निवाला' कैसे संभव है? तीन दिन से बहस चल चल रही थी, मगर कोई भी चमार का लौंडा बात ही नहीं करता। यहां जितने बड़े-बड़े लोग एकत्रित हुए हैं, सबके सब उनको बबुआ-लल्ला कहते हुए बहुत लार-प्यार दिखा रहे हैं। मगर किसी ने यह नहीं पूछा--'अरे साले भुक्खड़। अब तुम लोगों का अंत समय आ गया है। क्या यह तुम्हारे बाप-दादाओं की जायदाद है? लातों से मार-मारकर कचूमर निकाल देंगे।' बुढ़ऊ से कम से कम यह नहीं कहा--'जा जा! हम कुछ नहीं जानते।

यहां बड़ा अन्याय मच रहा है। ऊपर से ये बुजुर्ग कहते हैं कि कोर्ट में मत जाओ, हमारी पंचायत ही बहुत बड़ी कोर्ट है...'' धड़ाधड़ जो मुंह में आया, वह बोलने लगा तो अप्पल रामुडु के एक रिश्तेदार ने उठकर उसके जवाब में कहना शुरू किया, 'देखिये, अन्नमय्या बाबू! इतना गुस्सा करना ठीक नहीं। आप नायुडु खानदान के बड़े व्यक्ति हैं, इसलिए थोड़ा ठीक ढंग से बातें करना ही बेहतर होगा। यहां जितने बाबू बैठे हुए हैं, वे आपसे कुछ कम पढ़े-लिखे नहीं। अगर यह मामला कोर्ट में जायेगा तो इसका क्या परिणाम होगा, शायद आपको पता न हो, उनको अच्छी तरह मालूम है। इसीलिए इसमें अपने दृष्टिकोण के अनुसार वे आगे बढ़ रहे हैं। आप जल्दबाजी मत कीजिये।' जवाब कुछ तीव्र स्वर में ही था।

इसके साथ शोरगुल शुरू हो गया।

'दृष्टिकोण' का क्या मतलब है?' किसी ने पूछा

'लातों से मारने' का आपका क्या अभिप्राय है?' दूसरे ने पूछा

'अदालत में जायेंगे तो धज्जियां उड़ जायेंगी। पाई-पाई चुकाने को बोलेंगे,' कुछ ने कहा।

'नहीं नहीं, अब दाल नहीं गलेगी', एक और ने कहा।

'अब स्वराज्य तो आ गया, मगर बड़ी मनमानी चल रही है। कोई रोकटोक नहीं। दिन-दहाड़े गला घोंटने को तैयार हैं लोग...' पीछे से कोई बोल उठा।

यों अव्यवस्था बढ़ती जा रही थी।

इसमें न औरत-मर्द का प्रश्न था, न उच्च या निम्न वर्ग का झगड़ा था। यह झगड़ा था--कर्ज देने वाले और लेने वाले का। अप्पल रामुडु और गोपन्ना को माध्यम बनाकर यह घपला भिन्न भिन्न पहलुओं को छूने लग गया है।

श्री रामुलु नायुडु आमतौर पर किसी भी तरह की अव्यवस्था को सहन नहीं कर सकता। कभी-कभार उसके सामने ऐसी स्थिति भी उत्पन्न हो जाती कि लोग उसके सामने से निकल जाते। कुछ समय के लिए उनको उत्तेजित स्थिति में रहने देते। तब जाकर वे काबू में आते।

उस दिन अप्पल रामुडु ने वही काम किया। जब सभा में नीरवता आ गयी, तब बीच में खड़े होकर उसने बोलना आरंभ किया, 'बाबूजी! परसों से यहां जो बहस चल रही थी, उसको सुनने के बाद मैं समझता हूं कि सभा की राय है कि न्याय-अन्याय की बात जैसे भी हो, तीन साल पहले, तीन बड़े व्यक्तियों के सामने अप्पल रामुडु ने कर्ज लिया था और वादा किया था कि आज के दिन उसे चुका देगा। पता नहीं कि यह उन तीन बड़े व्यक्तियों की बात रखने की खातिर हुआ हो या अन्याय से भयभीत होकर उसे स्वीकार किया हो। आज उसके पास चाहे कुछ भी न हो, अपने को बेच-बाचकर या रही सही अपनी जमीन की बिक्री करके साहूकार का कर्ज उसे चुकता करना होगा।

सभा में बैठे हुए पंचों की दृष्टि गोपन्ना बाबू की तकलीफों पर पड़ी। उनके चार बेटे अब उनके साथ वहीं है। अप्पल रामुडु के सभी लड़के उसी के साथ हैं। हाथी के शावकों-से

बड़े। वे मेहनत-मजदूरी करके अपने पेट भर सकते हैं। एक जून खाने को न भी मिले तो कोई बात नहीं। इसलिए अब आप लोग चाहते हैं कि उन लोगों को किसी न किसी तरह मनाकर उनकी बची खुची एक मात्र जमीन का टुकड़ा बेचकर ही सही गोपन्ना बाबू का कर्ज चुकता कर दिया जाय।

''बाबूजी! आप पंचायत के सदस्यों को जो न्याय लगे वही करें। वह हमारे लिए भी सिर आंखों पर है,'' कहते हुए बैठ गया।

शोरगुल मचने के कारण अप्पल रामुडु ने क्या कहा था, किसी की समझ में नहीं आया। लक्षुम नायुडु भी कुछ समझ नहीं पाया।

''यानी... तुम्हारी राय में हालांकि वह कर्ज है, फिर भी धन चुकाना गलत है,'' लक्षुम नायुडु ने पूछा।

रामुडु ने इस सवाल का उत्तर नहीं दिया। जब दुवारा पूछा गया तो जवाब देना ही पड़ा।

''बाबूजी! हम अनपढ़ गंवार हैं। हमें क्या मालूम कि वह कर्ज है या नहीं। अगर है तो कब का है और कितना है? श्रीरामुलु जी बैठे हैं। आप ही कुछ सोच-समझकर सलाह दीजिये।' बड़े शांत स्वर में उसने कहा।

आज तीसरे दिन रामुडु की उपस्थिति ने कुछ लोगों को आश्चर्य में अवश्य डाल दिया। श्री रामुलु नायुडु का जो संदेह था, वह दूर हो गया। वह उठकर खड़ा हो गया, जैसे खूब सोचने-समझने के बाद एक निर्णय पर पहुंच गया हो।

''रामुडु! सुनो, अब मैं इस झगड़े का फैसला सुना रहा हूं।'' श्री रामुलु नायुडु ने कहा, उसमें कोई उत्तेजना नहीं थी।

''आज गोपन्ना जी को एक नया पैसा भी तुमको देने की जरूरत नहीं है। अब तुम निःसंकोच घर जा सकते हो।'' फिर गोपन्ना की तरफ देखते हुए बड़े शांत होकर कहा--'गोपन्ना जी! परसों के दिन आप मुझसे मिल लीजियेगा। आपका कर्जा चुकता कर दिया जायेगा।''

उसके बाद लोगों से कहने लगा, 'उठो, भाइयों, अब उठो चलें।'

लोगों की समझ में नहीं आया कि क्या फैसला हुआ था। इसी बीच अप्पल रामुडु उठकर खड़ा हो गया। ''सुनो, श्री रामुलु बाबू। मैंने ऐसी कौन-सी बात कही है कि तुम रूठ गये। मैंने जो कुछ कहा, उसमें गलती क्या है, वह बताकर जाओ,'' अपने को सम्हालते हुए बोला।

''नहीं तो। इसमें रूठने की क्या बात है। अगर इसका फैसला करने का भार तुमको सौंपा जाता तो, जैसा निर्णय तुम देते, ठीक वैसा ही मैंने दिया। फैसला तुमने मेरे मुंह से सुना तो तुमने सोचा, मैं रूठ गया। यानी उसमें जो अनौचित्य है, उसे तुम समझ गये।''

रामुडु को इन बातों को समझने में थोड़ा समय लगा। फिर भी वह पूरी तरह से समझ

नहीं पाया। नायुडु की आंखों में, उसकी नजरों में यह भावना साफ झलक रही थी।

रामुलु के अंतर की गहराइयों में झांकते हुए अप्पल रामुडु जैसे चकित हो रहा था कि क्या यह सब कुछ सच था? चकित होते हुए अंत में बोला, ''खैर अब मैं अपनी गलती स्वीकारता हूं। अच्छा, यह बता, तुम्हारा सही फैसला क्या है?''

''अरे, अब रहने भी दो यार! हां, अगर तुमको यह फैसला कुछ असंगत लगे तो, संगत क्या है यह तुम्हारे अंतर में बैठ चुका होगा। यदि अब तुम अपने अंतर की बात सुना दो तो उसी को हम अमल में लायेंगे।''

जब अप्पल रामुडु को नायुडु का ध्येय मालूम हो गया तो उसे आश्चर्य नहीं हुआ। पहली बार उस पर गुस्सा आया। उसके मुंह में एकटक देखते हुए बोला, 'बाबू! मैं कहता हूं, तुम बड़े साहसी हो।' धीरे से बोला। नायुडु समझ नहीं पाया।

'यानी?'

'यह तुम्हें मालूम है।' नायुडु के मुंह पर बदलने वाली भावनाओं को निहारते हुए कहा--''जब तुम मारते हो तो इसका पता नहीं लगता कि चोट कहां लगी है। जो भी काम तुम करते हो, लुक-छिपकर करते हो। यह तब पता लगता है, जब वह डूबने को होता है।

नायुडु ने यह कभी नहीं सोचा था कि रामुडु यह कहने का साहस कर सकता है। अपनी आंखों में आयी लालिमा को छिपाते हुए बोला, 'डुबाने वाले तुम हो या मैं?'

फिर कहा—'तुम पंच बनकर आये थे। तुमको न्याय सुनाना था, मगर तुमने उनसे न्याय सुनाने को कहा, जो न्याय मांगने आये थे। यह तो खुद की आंखें फोड़ लेने वाली बात हो गयी। तुम जैसे बड़े आदमी के लिए यह बड़ा अधर्म है।' बड़े बेझिझक होकर वह बोला।

श्री रामुलु नायुडु ने यह जरूर चाहा था कि अप्पल नायुडु न्याय की दुहाई दे। मगर धर्म-अधर्म का उपदेश सुनना उसे अभीष्ट नहीं था। इसलिए उसने उत्तर दिया, 'मुझे ऐसा क्यों करना पड़ा, यह तुम अच्छी तरह जानते हो, चूंकि तुम बहुत दुखी थे, मन बहुत विकल था, इसलिए मैंने ऐसा फैसला सुनाया था। लेकिन अब मैं जो भी कहूं, तुम तो उसे मानोगे नहीं!'

रामुडु ने इसे नहीं माना, ''तुम फिर पुरानी बातों पर आ गये। फैसला करने वालों को यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि फैसला ठीक है या नहीं। उसे इस बात का प्रयास नहीं करना चाहिए कि उस व्यक्ति को बदल कैसे दें। सोचना यह चाहिए कि अपने फैसले में न्याय कितना है और अन्याय कितना है। ऐसे फैसले सुनाने से सारे झगड़े समाप्त हो जायेंगे। अगर झगड़ा समाप्त नहीं होगा तो परेशानी व्यक्ति को होगी, फैसला करने वालों को नहीं।''

इस पर लक्षुम नायुडु झट से आगे आते हुए बोला, ''क्या यह बात सोलह आने सच

है?"

बार-बार जोर देकर पूछने से अप्पल रामुडु ऐसे ही आवेश में आ गया था। उसने ऊंचे स्वर में कहा, "हां हां सोलह आने सच है।"

बाबू लक्षुम नायुडु! तुमने यह बात इस लहजे में कही कि 'यह साला अर्से बाद हाथ में आया है। दबा दो।' यह सच है बाबू कि मैंने कभी आपसे दूर रहने की कोशिश की। बाबूजी की बात पर तब भी और अब भी भरोसा रखता हूं। मालिक अपने मुंह से अगर एक बार यह कह दे कि यह न्याय संगत कर्ज है, तो उसकी पाई पाई चुका दूंगा। माफी की बात उठाऊंगा ही नहीं। अगर अदा नहीं कर सका तो समझना, यह चमार का बच्चा किसी मां - बाप की औलाद नहीं...।

यह कर्ज है! यह कर्ज है!! यह कर्ज है!!!

रामुडु की बात पूरी होने के पहले ही श्री रामुलु नायुडु की आवाज सुनायी दी।

आवेश के प्रदर्शन से होने वाली लज्जा को छिपाने वाली वह कैसी आवाज थी, यह समझ में नहीं आ रहा था।

"—चाहे वे हों, मैं होऊं या कोई अन्य, कैसे कह सकते हैं कि यह ऋण नहीं है—यही मेरी समझ में नहीं आ रहा है--"

लंबे अर्से से, श्री रामुलु नायुडु की बनी छवि और कल रात दिखने वाले उनके स्वरूप--दोनों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास करते हुए नायुडु ने कहा--

"ऋण, दोष और पाप--किसी एक के समर्थन अथवा विरोध से अर्थ नहीं बदलते। कोर्ट की सुनवाई से आप जीत सकते हैं। किंतु मात्र इतना कर लेने से उस ऋण से उऋण होकर बच निकलेंगे, ऐसा समझना भ्रम होगा। इस जन्म में न सही, अगले जन्म में तो तुमको उसे चुकाना ही पड़ेगा।" यों कहते हुए उचाट मन से जाकर बैठ गया। बाकी लोग भी अपने-अपने स्थानों में बैठ चुके।

क्षण भर के लिए सभा में गहरा सन्नाटा छाया हुआ था। थोड़ी देर के बाद श्री रामुलु नायुडु आगे झुककर दूसरी तरफ देखने वाले अप्पल रामुडु से बोला, "तुम्हारी आजकल की हालत देखकर कर्ज चुकाने में..."अप्पल रामुडु श्री रामुडु नायुडु को बीच में ही टोककर बोला, "श्री रामुलु बाबू! अब तुम तकलीफ मत करो। तुम क्या कहने जा रहे थे, यह मुझे मालूम है। एक बार फैसला सुनाने के बाद तुम अपने फैसले पर अटल रहो। मैं अपनी बात पर अड़े रहूंगा। मैंने तुमसे यह नहीं पूछा कि ऐसा फैसला तुमने क्यों दिया?"

उदास मन रामुलु मुसलय्या की तरफ घूमे। अपने कर्तव्य का बोध उसे हो गया था। बोला--'देखो! मुसलय्या! मेरी जमीन--दो एकड़ तीस सेंट की है। तुम ले लो और जो कुछ मुनासिब समझो, दे दो।' अप्पल रामुडु ने अंजलि जोड़ी। पिछले तीन दिनों से पेशगी खीसे में रखकर चक्कर काट रहा था। अप्पल रामुडु को देखते ही उसने अपना सिर नीचा कर लिया। अप्पल रामुडु समझ गया। वह बोला--"बाबू! तुम चिंता मत करो। मेरे तन में जब

तक प्राण रहेंगे, तुम्हारा पैसा मिलेगा। यदि मैं मर भी गया, तो भी तुम्हारे पैसे को कोई टंटा नहीं रहेगा। इस बात से मुसलय्या का संदेह दूर हो जाना चाहिए था, किंतु नहीं हुआ।

"तुमको कुछ शक हो तो मुझे बता दो। शायद तुम समझते होगे कि मैं इससे उदास हूं। बिलकुल नहीं। मैं खुशी-खुशी बेच रहा हूं। तुम भी अपनी खुशी से जो मुनासिब समझो, दे दो।"

इस से मुसलय्या की जो भी शंकाएं थीं, वे दूर हो गयीं। तब अप्पल रामुडु ने पटवारी की तरफ देखकर कागज-पत्र तैयार करने के लिए कहा।

पटवारी जब करारनामा तैयार कर रहा था, तब लोग बुत बनकर बैठे रहे। इसके बाद आपस में कानाफूसी करने लगे। कुछ लोगों के पांवों में झुनझुनी हो गयी तो उनको झटकाते हुए बाहर जाकर बातें करने लगे।

"कर्ज अदा करने के लिए मोहलत मांगी गयी तो मिल गयी। कोई भी, चाहे वह जितना बड़ा आदमी ही क्यों न हो, कर्ज माफ करने की मांग करे तो यह कैसे मान जा सकता है?" एक ने कहा।

हालांकि यह बात उसने बड़े धीरे स्वर में कही थी, फिर भी बगल वाले ने उसका जवाब दिया--

"हां हां! गोपन्ना तो कोई धन्ना सेठ नहीं रहा।"

"धन्ना सेठ है तो कर्ज छोड़ देंगे क्या?"

"नहीं तो क्या करेंगे? खेत-खलिहान, जमीन-जायदाद सब कुछ छीनकर भिखारी बना देंगे? साहूकार लोगों का जब दिवाला निकला, तो कर्जदारों ने ऐसा किया था क्या?" बहस फिर फिर चालू हो गयी।

रामुडु के पास ही खड़ा था जोगेप्पडु। बैलगाड़ी किराये पर चलाकर दिन गुजार रहा था। पहले उसके पास भी कुछ जमीन थी। वह बोला : "पच्चीस-तीस लोगों का परिवार है। उनको खिलाना-पिलाना कोई हंसी-खेल नहीं। मजदूरी मिली तो मिली। अगर महीना-बीस दिन कोई काम न मिले तो हम सबका क्या होगा? भूखों रहना पड़ेगा, बूढ़े-बच्चे सबको! यह बात मैं अपने अनुभव से बता रहा हूं। सब उस बंसी वाले की कृपा है।"

"हां, सब भगवान की लीला है! झगड़े की जड़ जर-जमीन है। मनुष्य की गांठ खोली जा सकती है, मगर भगवान की नहीं।... देखो न बेचारे गोपन्ना की क्या स्थिति हो गयी। राम, राम! अप्पल रामुडु की हालत कितनी दर्दनाक है। दोनों के दोनों बड़े दोस्त थे और अब उन दोनों में झगड़ा हो गया। उसके फैसले के लिए इतने लोग..."

चमारों को सरकार की तरफ से दी जाने वाली रियायतों को लेकर और लोगों में लुप्त पाप-भीति को लेकर कुछ लोग तो आलोचना करने पर उतर आये।

पटवारी ने करारनामा तैयार करके श्री रामुलु नायुडु की तरफ देखा। नायुडु घुटनों पर सिर टेककर बैठा था। पटवारी कुछ बोलने ही जा रहा था कि जैसे ही सूर्यम जी की

नजरों से उसकी नजरें मिलीं, त्यों ही वह चुप रह गया। कोई बात न निकली।

उसने रामुडु को बुलाकर अनुबंध पत्र पढ़कर सुनाया। उसके मुंह से कहलवाया कि 'पढ़कर सुनाया गया। सब कुछ ठीक है।'

जहां अंगूठे की टीप लगानी थी, दिखाकर, पत्र और स्याही पैड उसके सामने रख दिया गया।

अप्पल रामुडु ने पत्र हाथ में लेकर मंडप के बीच बैठे हुए। श्री रामुलु की तरफ देखते हुए कहा--'श्री रामुलु बाबू! तुम चिंता मत करो। मैं आवेश में आकर जरा बहक गया। वह जान-बूझकर कही हुई बात नहीं थी। मैं होश में नहीं था। तुम बुरा मत मानना।

तुम पढ़े-लिखे आदमी हो। सोचा, तुम सब कुछ जानते हो। मुझे यह बिलकुल मालूम नहीं था कि तुमको भी सचाई मालूम नहीं थी। अगर जानते होते तो इतमीनान से ऐसे नहीं बोलते और मेरे मुंह से भी जल्दबाजी में ऐसी बातें नहीं निकलतीं। थू है, मेरे टुच्चेपन पर!

"हां, श्री रामुलु बाबू! तुम्हारी बात अलग है। हम तो इसी मिट्टी में जन्म लेकर यहीं पले-बढ़े। सारी जिंदगी यहीं गुजर गयी। हम को पता ही नहीं था। और तो और, मैं कल रात तक जानता ही नहीं था।"

"बाबू! इस झगड़े का झूठ-सच क्या है, इस कर्ज को मैंने न्याय संगत क्यों नहीं माना, अप्पल रामुडु में कर्ज नकारने की दुष्टभावना कव, क्यों, कैसे उत्पन्न हुई, उसकी पूरी कहानी आपको बताऊंगा और तब जाकर इस पर अंगूठे की टीप लगा दूंगा। तब तक आप सब लोगों को जरा सब्र करना पड़ेगा।"

फिर लोगों की तरफ उन्मुख होकर बोलने लगा--"बाबू साहबो! आप सब लोग कह रहे हैं कि चमार-चंडाल और मेहनत-मजदूरी करने वाले हम गरीब लोग सब खाऊ हैं, सदा दूसरों का माल हड़पने की सोच में रहते हैं, न्याय-अन्याय की बात हम कभी सोच ही नहीं सकते। और यह भी कहते हैं कि अगर हमको खाना-कपड़ा नहीं मिल रहा है तो उसकी यही वजह है।

'मनुष्य की समस्याओं को सुलझाया जा सकता है, किंतु भगवान के दिये कष्टों का कोई हल नहीं है।' यह बात अभी अभी किसी ने कही। अब आप ही इस पर गौर कीजियेगा कि यह मनुष्य द्वारा खड़ा किया गया बखेड़ा है या भगवान की सृष्टि है।"

सूरज जो माथे पर था, वह पश्चिम को उतर रहा था। चबूतरों पर बैठे हुए लोगों तक भी उसकी आवाज पहुंचे, यह सोचकर अप्पल रामुडु ने कुछ पीछे को हटते हुए बोलना शुरू किया--

'यह पचास साल पहले का वाकया है। यहां जितने लोग मौजूद हैं, उस समय पैदा ही नहीं हुए थे। यहां तक कि कुछेक की माताओं का भी जन्म न हुआ होगा। हां उधर जो खंभे के पास बैठे हुए आसिरि नायुडु हैं, वह मुझसे बड़ा है। मैं सच बोल रहा हूं या

झूठ, उसको मालूम है। वह इसका साक्षी है।

मेरे बापू मरते वक्त छः एकड़ की जमीन मेरे नाम पर और छः एकड़ की जमीन मेरे भाई के नाम पर छोड़ गये। पांच एकड़ की तरी और सात एकड़ की खुश्की। हम दो भाई और पांच बहनें हैं।

हम दोनों भाई छः-सात साल मिले-जुले रहे। बाद में अलग हो गये। जब हम अलग हुए तब हरेक को मिले थे--एक सौ अस्सी तोले चांदी, दो-दो तोले सोना और एक-एक छोटा मकान।

आप लोग नहीं जानते कि उस वक्त यह गांव कैसा था और यहां की जिंदगी कैसी थी। हां, जहां तक मुझे याद है, सबके पास थोड़ी बहुत जमीन-जायदाद रहती थी। नायुडु परिवार वाले खेती-बाड़ी करते थे, यादव भेंड-बकरियां पालते थे, जमीन की छोटी छोटी टुकड़ियों में धान वगैरह की फसल उगाते थे। चमारों के पास खुश्क जमीन की टुकड़ियां कुछ अधिक थीं, तरी जमीन कुछ कम। हम लोगों में से जो गरीब थे, वे नौकर हो जाया करते थे और निम्न जाति के लोग कुली-कबाड़ी और जोताई का काम करके जिंदगी बसर करते थे।

बाबू जी! एक बात तो कह दूं--जग्गा रायुडु--यानी—सूर्यम बाबू के पिता जी और उनकी बिरादरी के कुछ परिवारों को छोड़कर गांव के अन्य लोग दाने-दाने के लिए मोहताज थे। इनमें जुलाहे थे। मिलों की स्थापना के कारण उनके करघे अटारी पर चढ़ाये जा चुके थे। चरखे बंद हो गये। सब के सब बेरोजगार।

ऐसे दिन थे।

ऐसे दिनों में मंच पर गंगय्या जी प्रकट हुए। गंगय्या जी ऐसे व्यक्ति थे जो जगह-जगह बहुत घूमते-घामते थे। एक बार पश्चिम की तरफ हो आये। साथ में तंबाकू का व्यापार ले आये। सूर्यम बाबू के चाचा—वेंकट नारायण उनके साझेदार बन गये।

व्यापार बढ़ा। धीरे-धीरे बढ़ा। खूब बढ़ा। वैसे मूंगफली की फसल इसके पहले ही वहां स्थान बना चुकी थी। मूंगफली की फसल से लोगों को कुछ डर लगता था। तंबाकू उगाने में भी। हां पटसन से कोई विरोध नहीं था।

ज्यादातर किसानों को खाद्यान्नों जैसे—धान, बाजरा, ज्वार, मकई आदि फसलों में ज्यादा दिलचस्पी थी। क्योंकि इन फसलों से लोगों को खाने की कमी नहीं रहती थी। हां गांवों में ऐसे लोग अधिक थे जिनके तन पर कोई कपड़ा ही नहीं होता था। मर्द सिर्फ एक लंगोटी से काम चला लेते। अमीरों के पास भी ज्यादा कपड़े नहीं होते थे। हां, थोड़ा बहुत पैसा बचता तो सोना खरीदते और औरतों के लिए गहने बनवाते थे, दान-पुण्य में भी खर्चते थे।

बाबूजी, उन दिनों किसी भी नायुडु खानदान के ऊंचे या छोटे परिवारों की स्त्रियां लक्ष्मी देवी के समान बहुत सुंदर लगती थीं। उनके गले में इतने गहने लदे होते थे कि उनको

गला इधर-उधर घुमाने में भी तकलीफ होती थी। कंठा और हंसुली तो जरूर पहना करती थीं।

हमारे गरीब परिवारों की औरतें भी दो-दो, तीन-तीन पंसेरी की चांदी के गहने पहना करती थी--कड़े, जोसन, पैजनियां, करघनी, कंगन, सिवड़ी, पाजेब, कटिबंध आदि।

आज वे पुराने गहने देखने को कहीं भी नहीं मिलेंगे। संभव है कि आप लोगों में से कुछ उनके नामों से भी परिचित न हों। पता नहीं, अब वे सारे के सारे गहने कहां गायब हो गये। देखते-देखते वाणिज्य फसलें आ गयीं। अपने आप वे थोड़े ही आयी थीं! लोग-बाग उनको जोर-जबर्दस्ती करके, खींच-खांचकर ले आये।

बाबूजी! आजकल कृषि विभाग की तरफ से खेती बाड़ी के संबंध में तरह-तरह की सूचनाएं किसानों को दी जाने लगी हैं। ठीक वैसी ही सूचनाओं से संबंधित बहुत कुछ जानकारी उन दिनों साहूकार लोग फसलों के संबंध में देते रहते थे। हालांकि गरीब किसानों ने कुछ उत्साह इस दिशा में नहीं दिखाया, मगर बड़े किसानों ने नयी फसलें आजमाने की कोशिश जरूर की थीं।

तब तक इस गांव में रुपये-पैसे का उतना प्रचलन नहीं था। हां मालगुजारी चुकाने आदि के लिए कुछ पैसे बड़े किसानों के पास रहते थे। वैसे लेन-देन सिर्फ वस्तुओं के माध्यम से ही होती थी। जब रुपये-पैसे का प्रचलन अधिक होने लगा तो हिसाब-किताब के जरिये ही सब काम होने लगे।

मगर साधारण जनता को इस हिसाब-किताब के संबंध में कुछ भी मालूम नहीं था। कुछ समय तक नये पैसे की तिकड़मबाजी थी। अब इस हिसाब-किताब के मामले में बड़ी-बड़ी तिकड़मबाजियां शुरू हो गयीं।

इसीलिए हम जैसे डरपोक लोग रुपये-पैसे की लेनदेन के झमेले से दूर रहते थे। मगर चीजों के विनिमय में भी बहुत भारी धोखाबाजी हमारे साथ हुआ करती थी।

बाबूजी जब हम कोई चीज बेचने जाते थे तो रुपये के पांच 'कुंचम' (तौल में एक 'कुंचम' पांच किलो के बराबर होती थी।) के हिसाब से लेते थे। जब हम उनसे खरीदने जाते तो रुपये के तीन 'कुंचम' मात्र देते थे। हमारी खरीदारी के वक्त जो कुंच वे उपयोग में लाते थे, छोटा होता था और जब हम बेचने जाते हैं तो कुंचम एकदम बड़े आकार का होता था। जब हम ने पूछा कि इतना अंतर क्यों है, तो उनका उत्तर था--यह व्यापारिक धर्म है।

व्यापारिक फसलों के आगमन से कुंचम के नाम पर जो वंचना होती रही, उसके साथ-साथ रुपये-पैसे के विनिमय में भी बड़ी धोखाधड़ी का सामना हुआ। एक तो करेला, दूजा चढ़ा नीम। क्या किया जाय?

गांव के आधे से अधिक बुनकर देखते-देखते साहूकार बन बैठे। बाकी जो गरीब थे, उनके यहां छोटे मोटे क़ाम देखते हुए अपना खुदरा व्यापार चला लेते थे।

उन दिनों आज की ही तरह यह गांव दस-पंद्रह गांवों के लिए बड़ा केंद्र था। ऊपर से ऐसा दीखता नहीं था। मंगलापुरम, तंगुडि बिल्लि, एंकन्नपेट, अग्गुरारम--इन सारे गांवों की सारी व्यापारिक फसलों का व्यापार इस गांव के साहूकारों द्वारा ही चलता था।

बाबूजी, फसल तैयार होते ही साहूकार उपस्थित हो जाता था। 'अरे! अप्पल नायुडु! अरे अरिसि गाडू! मूंगफली का भाव *पुट्टि* (बीस मन) का इतना है।' हम जवाब में कहते, 'ठीक है।' फिर कहता, 'चूंकि माल में कुछ नमी है, इसलिए छीजना इतना घटाना पड़ेगा।' हम जवाब में कहते, 'ठीक है'। वह कहता, 'पूरे माल का इतना वजन है।' हम कुछ नहीं बोलते। वह कहता, 'तुमको इतनी रकम मिलेगी।' हम कुछ नहीं बोलते। हां, अगर पैसों की जरूरत पड़े तो कभी ले लेते थे। नहीं तो कह देते, 'अपने ही पास रहने देना।'

उन दिनों किसान अपना पैसा साहूकार के पास ही पूंजी के रूप में रख छोड़ते थे। साहूकार किसानों को सूद देता था और किसानों की उस पूंजी को अधिक सूद में देकर धंधा करता था।

इस तरह साहूकार किसान का पैसा चाहे जितना हजम कर ले, मगर किसान को उससे कुछ रियायत मिल जाती थी। इसलिए अनिच्छा से ही सही, किसान व्यावसायिक फसलों की तरफ ज्यादा आकर्षित हुए।

उसके बाद कीमतों में उतार-चढ़ाव आने लगा। जब मूंगफली की उपज खूब होती थी तो उसकी कीमत गिर जाती। उस साल मिर्च की कीमत आसमान को छूने लगती। मिर्च की जिस साल अच्छी उपज होती, उस वक्त उसकी दर एकदम नीचे चली जाती। दूसरी तरफ तंबाकू की कीमत बढोत्तरी पर रहती। हम सोचते थे कि अगर यह मालूम हो जाता कि कीमतें कब गिर जाती हैं और कब बढ़ने लगती हैं तो कितना अच्छा होता। मगर किसान को इसकी सारी तफसील मालूम हो, तब न!

बाबूजी, मुझे एक बात तब भी और अब भी समझ में नहीं आ रही है। मैं आपके जमाने की बात नहीं बताऊंगा, अपने जमाने में चावल का बोरा सात रुपये में मिलता था। एक गज कपड़ा दो आने में मिल जाता था। कहां सात रुपया और कहां सत्तर रुपये? मालूम नहीं, कीमतें ये ऐसी क्यों बढ़ाते जा रहे हैं या कीमतें अपने आप आसमान को छू रही हैं!

बाबू, ऐसी उटक-पटक में ही निचले स्तर के साहूकार ऊपर, और ऊंचे स्तर के किसान निचले स्थान पर जा पहुंचे। दस साल के दरम्यान नायुडु घराने की औरतों के सारे गहने साहूकारों की पत्नियों के गले की शोभा बढ़ाने लग गये। साहूकार उधर गुंटूर कोव्वूर तक, इधर बरमपुरम-बस्तर तक व्यापार के सिलसिले में अधिक आने-जाने लगे।

बाबू! अब मैं अपनी कहानी सुनाऊंगा, सुनियेगा।

एक लंबी सांस लेकर जब चारों ओर एकत्रित लोगों की तरफ देखा तो लगा कि वे

उसकी बातें बड़े गौर से सुन रहे थे, तब उसे दुगुना उत्साह हुआ। उसने बोलना आरंभ किया, ''मैं शुरू से ही खूब मेहनत करके अपनी जिंदगी चलाता था। सुस्त मैं कभी नहीं था, ऐरे-गैरे लोगों के साथ सैर-सपाटे में कभी नहीं गया। और हां, पैसे का कोई लाभ हो तो काशी तक भी हो आने को तैयार रहता था।

जिस साल सीतारामुडु का जन्म हुआ उस साल अपनी खुश्क जमीन में बाजरे की फसल उगाना छोड़कर मूंगफली बोयी थी। एक अलग टुकड़े में। उस साल मौसम भी अनुकूल था, जमीन भी सधी हुई थी।

एक दिन मैं खेत में निराई कर रहा था। उसी समय गोपन्ना बाबू उधर जाते हुए खेत की मेंड़ पर आ गये। मैंने उन्हें देखा नहीं था। खेत की तरफ देखते हुए उन्होंने कहा,

'क्यों रे अप्पल रामुडु! तुम्हारी फसल बहुत अच्छी हुई है।'

मैंने कहा, 'बड़ों की दुआ है।'

'फसल किसको दे रहे हो?' उन्होंने पूछा।

'फसल तैयार होने दीजिये... जो मांगें उनको दे दूंगा।'

तब गोपन्ना बाबू की मूंछें भी ठीक से नहीं उगी थी। उन्होंने कहा, 'हर कोई बड़ लोगों की मदद करने के लिए तैयार रहते हैं। छोटे आदमी को कोई नहीं पूछता।'

उन दिनों गोपन्न बाबू तंबाकू की गट्ठी कंधे पर डाले खुद व्यापार के सिलसिले में अग्गुरोरम, पूडिमडका, ताटिसेट्ल पालेम, नागोरम घाट-बाजार, समुद्र के किनारे के गांवों में घूमते थे। व्यापार में उतरने के प्रयत्न में उसी साल से थे।

तब से लेकर हम दोनों गहरे दोस्त बन गये। मैं उनका पहला किसान था, जिसने यह फसल बेची थी ओर अंतिम भी। इस बीच में हमारे मुहल्ले के लोग, नाते-रिश्तेदार, यार-दोस्त न जाने कितने कितने आये थे, कैसे-कैसे आये थे और जैसे आये थे, वैसे-वैसे गये भी थे। वह सारा ब्यौरा मैं अब नहीं देना चाहता।

हां, मैं गोपन्ना बाबू की वजह से ऊपर आया था या मेरी वजह से वे ऊंचे स्थान पर पहुंच गये थे या हम दोनों भगवान की कृपा से ऊपर आये थे... कुछ भी हो, इन पांचेक वर्षों में हम दोनों मिलजुल कर तरक्की कर गये। पता नहीं, उसके बाद क्या हुआ था, वह ऊपर उठते गये, मैं नीचे गिरता गया।

छः एकड़ की मेरी जमीन नौ एकड़ की हो गयी थी। फिर उसके बाद थोड़ा-थोड़ा करके छः एकड़ बेच डाले। सोना-चांदी खतम हो गया।

बाबूजी, डूबने वालों में मैं अकेला नहीं था। हमारे टोले में यादव तीन चौथाई से भी अधिक थे। उन्होंने अपना सब कुछ खोया। नायुडु परिवारों में कुछ लोगों का दिवाला निकल गया। इस तरह कई लोग उस भंवर में फंसकर डूब गये थे।

हां, प्रश्न यह उठ सकता है कि यदि वह भंवर ही था तो सभी किसानों को डुबो देता। कुछ किसान बचे कैसे?

नायुडु लोगों की सारी खेती-बाड़ी तालाब के नीचे की तरी जमीन में थी। उनको खुश्क जमीन नहीं के बराबर थी और साहूकारों से वे कुछ दूर ही रहते थे।

बाबूजी, किसानों में ऐसा कोई नहीं था, जो साहूकार के कर्ज का तौर-तरीका कैसा होता था, यह जानता नहीं हो। और ऐसा कोई भी किसान नहीं बचा था, जो उसके जाल में न फंसा हो।

आप यह मत सोचिएगा कि मैं साहूकारों की नुक्ताचीती करता हूं। जैसा श्रीरामुलु बाबू ने कहा था–'उन लोगों ने शायद अनजान होकर पाप किया हो।' मगर मैं कहता हूं कि उन लोगों ने पाप तो जरूर किया था जिसने पूरे गांव को तबाह कर डाला था। पहले किसान डूबे, फिर साहूकार भी।

मैं आप को यह बता दूं, पच्चीस वर्ष पहले बीस-साठ हजार तक की रकम प्रचलन में रहती थी–इस गांव में। छोटे व्यापारियों की बात छोड़ दीजिये। अब वह सारा पैसा गुम कहां हो गया?

तंबाकू पर कर वसूली शुरू होने के बाद उसका व्यापार ठप हो गया। पश्चिम वाले व्यापारियों ने इनको खूब ठगा। मूंगफली और मिर्च के कारबार में कुछ लोगों को जंक्शन के पास वाले मिल मालिकों ने धोखा दिया और स्टेशन के पास के मिल मालिकों ने कुछ दूसरे लोगों को डुबो दिया। सभी मिल वालों को उनसे भी बड़े मिल - आमुदालवलसा के मालिकों ने निगल लिया। अच्छा तो, अब उन मिलों का क्या हाल है? शायद वे सब उनसे भी बड़े मिल निगलने की ही ताक में रहे होंगे। यह मैं नहीं जानतां शायद यह क्रम चलता ही रहेगा!

बाबूजी, बुजुर्गों ने कहा, व्यापार और जुआ–दोनों एक समान है। यह दुनिया बड़ी टेढ़ी है और यहां सीधी उंगली से घी नहीं निकल सकता। चोरी-की-चोरी ऊपर से सीना-जोरी अधिक हो गयी है। समरथ को नहीं दोष गोसाईं। कमजोर को सताना ही धर्म है? क्या यह मनुष्य के हाथ में है या ईश्वर की टेढ़ी चाल है? इसमें क्या रहस्य है, आप ही बताइये।

रामुडु कुछ लमहे मौन रहा। जब उसके मन का आवेग कुछ कम हुआ तो बोलना शुरू किया–

जब आपने पंद्रह साल पहले यहां कदम रखा था, तब गांव में हम सब का यह हाल था।

बाबूजी, आपको याद हो या न हो एक दिन शाम को जब मैं भैसों को सानी-पानी दे रहा था, तब हमारे मुहल्ले में मेरे ही घर के पास आकर आपने मुझी से पूछा, 'अप्पल रामुडु कहां रहता है'? मैंने कहा, 'मुझी को अप्पल रामुडु कहते हैं'।

"रामुडु! मैं तुमसे कुछ बात करना चाहता हूं'!

सिंतम्म तल्लि की तरफ चले गये। देर तक हम दोनों में बातचीत होती रही। विचार विनियम होता रहा। आपने मुझे कई बातें बतायीं। मैंने भी अपनी तरफ से कई बतायी।

सच कह रहा हूं, उस दिन रात को मुझे नींद नहीं आयी थी। मुझे एहसास हुआ कि इतने दिनों बाद अंधकार से भरी हुई गरीबों की दुनिया में एक ऐसे व्यक्ति ने प्रवेश किया जो ज्योति जलाकर रास्ता दिखाने का संकल्प लिये हुए है। उनका भला हो, चाहे उनका सपना सच निकले या न निकले, इतना जरूर हम चाहते थे कि हमारे ऊपर ऋण का जो भार था वह उतर जाय और सुबह-शाम खाने को रोटी मिले। मैंने भगवान से यही मान-मनौव्वल की थी।

बाबू जी, आपने पहले इस गांव में हाईस्कूल खुलवाया। आपने कहा, जब तक आदमी पढ़ा-लिखा न होगा, उसकी उन्नति नहीं हो सकती। इसलिए तुम लोगों के बच्चों को पढ़ना चाहिए। मैंने सोचा, झुलसते पेट को अन्न चाहिए, पढ़ाई-लिखाई से क्या होगा। फिर भी आपकी बात पर हमें बड़ा भरोसा था। इसलिए हमने श्रमदान किया। सोचा, आज न सही, आगे हमारे बच्चों को लाभ होगा। हां निर्माण के वक्त बड़ा लाभ हुआ। काम जो मिला था।

इसके बाद गांव की सड़क की बात आयी। इसके नाम पर गरीबों को काम मिला। दोनों जून खाने को रोटी मिली। उसके बाद सरकारी गोदामों का काम आया, कुएं खुदवाये गये। खूब मजदूरी मिलती रही। फिर उसके बाद कोई काम न रहा। इसमें आपको भी सफलता नहीं मिली। फिर लोगों की वही हालत हो गयी, जो पहले थी। बाबू जी, हमारी क्या हालत है, सो आपसे छिपी नहीं है। हमें वे लोग भी अच्छी तरह जानते हैं, जो पहले से यहां बसे हुए हैं।

मैं यह भी साफ बता दूं कि हम शराबी नहीं, वेश्यागामी नहीं और न जुआखोर ही हैं। आज हमारे पौत्र बनियान पहनने लगे हैं। मगर अपने जमाने में इसका नाम तक हम नहीं जानते थे। बस हमें खाने को रोटी चाहिए थी, थोड़ा चावल और मांड़। बाजरे की कांजी-ज्वार की रोटी। पानी वाला मट्ठा। मट्ठा नहीं तो कोई झोल या रसा। प्याज का टुकड़ा। मूंगफली की बड़ियां। और वो भी नहीं तो भुनी हुई हरी मिर्च!

ऐसा खाना प्राप्त करने के लिए घर भर के लोग पसीना बहाते हैं, मेहनत-मजदूरी करते हैं। आप लोगों के यहां दो-एक काम करके कमाते हैं। मगर हमारा पूरा घर-परिवार इसी में जुट जाता है।

हां, हम लोगों के यहां सौरी के बच्चे को छोड़कर सबके सब साठ-सत्तर के मर्द भी और औरतें भी काम करती हैं। भैंस भी हमारे साथ रहती हैं। चाहे धूप हो, चाहे पानी, चाहे गरमी हो, चाहे जाड़ा—बस तीन सौ साठ दिन हमारे काम के दिन हैं।

जिस दिन मजदूरी नहीं मिलती, उस दिन भी हमारी औरतें घर में नहीं बैठतीं; चूल्हा जलाने के काम में आने वाली सूखे झाड़ आदि लकड़ी की खोज में बाहर निकल जाती हैं। घर के छोटे बच्चे गोबर इकट्ठा करने के लिए भैंसों के पीछे घूमते रहते हैं।

बाबू! इतनी मेहनत के बावजूद हमारे पेट नहीं भरते थे। हमारे खेत बिकते गये।

ऋण शेष रह जाता था। ज्यों का त्यों।

जिनके पास कुछ नहीं होता था, एक साल के अंदर अमीर बनते जा रहे थे। साल में पच्चीस-तीस हजार रुपया बचा लेते थे।

बाबू जी, किसका पैसा कौन हड़प रहा है और बड़ा आदमी बन रहा है और किसी-किसी को खाना-कपड़ा क्यों नहीं मिल रहा है--यह आप सोचकर बताइयेगा। बोलते-बोलते वह रुक गया।

रामुडु ने जो सवाल किया था, वह ऐसा सवाल नहीं था, जिसका समाधान वह चाह रहा था। मगर हां, अगर वह उत्तर चाहता भी तो देने के लिए कुछ हो, तब न।

दिन चढ़ रहा था। उस दोपहर की कड़ी धूप का ख्याल न करते हुए लोग अप्पल रामुडु की आक्रोधश भरी बातें सुनते रहे। भूख भी भूल गये।

जब उसने महसूस किया कि जब उसका भाषण दूसरा मार्ग पकड़ रहा था तो प्रसंग बदलने की चेष्टा करते हुए वह बोला--

कल रात हमारे घर में एक झगड़ा हो गया था। सीतारामुडु मेरे शरीर के दो टुकड़े करके मेरी जान लेना चाहता था। उसकी कथा आप जानते ही हैं। हमारे जमाने में लोग बर्मा जाकर पैसा कमाकर लाते थे। वह बोला, मैं भी पैसा कमाकर लाऊंगा। वहां दो साल सामान ढोने का काम किया, एक साल रिक्शा चलाया। इस बीच उसकी पत्नी को कोई भगाकर ले गया। अपने एकमात्र पुत्र को साथ लेकर वह घर लौटा।

रात को जब हम दोनों में बातें हो रही थीं, तब मैंने कहा, 'इन तीस-पैंतीस सालों की लेनदेन के सिलसिले में पता नहीं, साहूकार का पैसा हमने खाया था या हमारा पैसा साहूकार ने, मगर हमारी तरफ कर्ज इतना हो गया। गांव के बड़े लोग जिद कर रहे हैं कि कर्ज चुका देना चाहिए। श्री रामुलु नायुडु को बुलाकर कर्ज चुकाने के लिए हमको मजबूर करेंगे। छोड़ेंगे नहीं। इसलिए तुम अपनी जिद छोड़ो। जमीन बेचने के लिए राजी हो जाओगे तो अच्छा रहेगा।'

इस पर वे राजी नहीं हुए। पुराना ही राग अलापते रहे।

'गांव के नायुडु खानदान के लोगों ने आश्वासन दिया कि यह भार हमारे ऊपर डाल दो। हम देख लेते हैं। हमारे अपने रक्षक श्री रामुलु बाबू तो हैं ही। बस, अपना छकड़ा चलता रहेगा।

बाबू, आप गुस्से में नहीं आयें। आपका नाम लेते ही घर के सब लोग मुझ पर टूट पड़े। बोलते रहे--"अरे गांव के उद्धार के नाम पर जो कुछ भी उसने किया--कराया था, वह सब बड़ी ढकोसलाबाजी थी। हम गरीबों का सत्यानाश हो गया।"

आपने सड़क बनवायी थी। उस सड़क के लिए पत्थर ढोकर गाड़ियों में लाये थे। अपने हाथों से उनको सड़क पर एक क्रम में जमाया था। फिर उस पर मिट्टी डालकर वाहन चलने योग्य बनाया था। उस पर जीप चलने लगे, मोटरें भागने लगीं। लारियों का आवागमन

होता रहा। बसें आ जा रही थीं। मगर एक बात बता दूं...? गरीब लोगों की जो बैलगाड़ियां थीं, उनका चलना बंद हो गया। उनकी आमदनी ठप हो गयी। रेत, पत्थर या अन्य सामान आदि लाने, ले जाने में बड़ी सुविधा हो गयी। पच्चीस-तीस परिवार बैलगाड़ियों की आमदनी पर ही जिंदगी बसर करते आ रहे थे।

बिजली आ गयी थी, आपकी ही वजह से। पंपिंग यंत्र भी लगाये गये। तब ढेंकली चलाने वालों का काम छिन गया।

सूर्यम बाबू की धान की चक्की जब से कायम हो गयी, रईसों के घरों में धान कूटने का काम बंद हो गया। हमारी औरतों की आय बंद हो गयी। हमारी औरतों को मजदूरी में मिलने वाले धान को भी वे चक्की में पिसवाने लग गयीं।

ऐसी कई सारी बातों पर बहस हुई। ठीक से मैं उनको जवाब नहीं दे पाया। तब बारिक सर्रय्या बोला, 'तुम लोगों की बातों में कुछ सचाई जरूर थी, मगर पूरी बातें सच नहीं थीं। जहां तक मैं समझ पाया, वह यह था कि वे बाबू पढ़-लिखकर शहर से लौटे थे। वहां के लोगों की सुविधाएं देखीं। उन्होंने सोचा वही सुविधाएं यहां भी हो जायं तो यह शहर बन जायेगा। और हम भी शहर के लोगों की तरह सुखी रह पायेंगे। उनको क्या मालूम था कि इन सुविधाओं के कारण किसी को सुख मिला तो और किसी को दुख ही दुख हाथ लगा। मेरा ख्याल है कि अगर यह बात उसको पहले से मालूम हो जाती तो ऐसा काम वे करने को शायद तैयार ही नहीं होते।'

तब भी मेरे घर के लोग चुप नहीं रहे। तब मैंने कहा, 'तुम लोग जो बात मुंह में आयी, बोलते चले गये। न्याय-अन्याय का भी ख्याल रखो। सूर्यम बाबू ने बीस हजार का चंदा दिया था। धान की चक्की स्थापित हो गयी। हां उससे पैसा मिलने लगा था, मगर इसमें उस बाबू का क्या दोष था? वैसे ही लक्षुम नायुडु ने दान में जमीन दे दी। हाईस्कूल बन गया। उसके इर्द-गिर्द की जमीन की कीमतों में वृद्धि हो गयी। उनको इससे बहुत लाभ हुआ। हां, उन्होंने जोर-बरर्दस्ती से लोगों को जमीनें थोड़े ही बेची थीं?'

इस तरह से मैं खूब चीखा-चिल्लाया। अब एक सर फिरे छोकरे ने आवाज कसी, 'अरे ए दादा जी! यह मत भूलो कि हमने भी श्रमदान किया था। उसके बदले में हमें क्या इनाम मिला?'

'मजदूरी तो मिली थी, उन दिनों।'

'हां हां, मजदूरी मिली थी। उसी मजदूरी ने हमेशा के लिए हमारा काम बंद करवा दिया था। भगवान ने हमको यही इनाम दिया था। बस!' उसने कहा।

'जब सब लोग श्री रामुलु बाबू की इतनी तारीफ कर रहे हैं तो अकेले हमारे विरोध करने से वे बुरे थोड़े ही हो जायेंगे। कहीं कोई गलती जरूर है।'' मैंने कहा।

फिर किसी दूसरे ने कहा, 'अगर सब लोग श्री रामुलु बाबू की तारीफ करने लगे हैं तो इसके पीछे एक रहस्य है...! गांव में जगह-जगह इतने सारे होटल खुल गये। पान की

दुकानें कायम हो गईं। दूसरे गांवों से लोगों का आवागमन अधिक हो गया। पढ़ने के लिए विद्यार्थी आने लगे। इसीलिए ये सारी सुविधाएं हो गयीं। पिछले दिनों जिन साहूकारों का दिवाला निकल गया था, वे सब अब नई शक्ति जुटाने लगे। ऐसे लोग तों तारीफ करेंगे ही।'

मैं कुछ जवाब देने ही वाला था कि उसी ढीठ छोकरे ने फिर दागा, 'दादा जी! उन्होंने कोई पुण्य-कार्य भी किया था?'

'सारे कर्मों का श्री रामुलु बाबू उत्तरदायी तो नहीं। उन्हें जो काम अच्छा लगा, कर दिया। इससे कुछ लोगों के लिए हित हो जाता है तो कुछ के लिए अहित।' मैंने कहा।

इस पर खूब बहस हुई। अंत में एक ने कहा, 'तुम्हारे जैसे थोथे इस गांव में तीनेक और हो जायं तो फिर पूछना ही क्या?'

बाबूजी, अब मैं सत्तर वर्ष का हो चुका हूं। मैंने अपनी जिंदगी कैसे गुजारी, आप लोगों को मालूम है। अब मेरे अपने ही लोग मुझे ताने मारने लगे तो मेरा मन बहुत दुखी हो रहा है। मेरे मन की व्यथा को भांपकर यर्रय्या, जो मेरे घर आये मेहमान थे, बोले, 'अरे छोकरो! अब उसे कुछ कहना ठीक नहीं। तुम लोगों के साथ अब तक जो वंचना और दगाबाजी होती रही, उसे न तुम लोग पहचान सके न वह। इन सबों का सुराग यहां नहीं, कहीं और है। वह खतरा हम सब के ऊपर लटका हुआ है।

/ किसान जो अनाज पैदा करता है, उसे मालिकों के गोदामों में पहुंचाता है। अब मजदूर उसे रोकने लगा है। पिछले जमाने में उसे मार-मारकर काम करवा लेते थे मगर अब वैसा नहीं चलता। मजदूर को रास्ते से हटाने के लिए मशीन चाहिए। मशीन चलाने के लिए बिजली की जरूरत पड़ती है। यही नहीं, पढ़े-लिखे मजदूर भी चाहिए। इसीलिए स्कूल खोले गये। सड़कें बनायी गयीं। और यह बिजली भी। ये सब कुछ हमारी खातिर हमारी सुविधा के लिए कायम की गयी है–ऐसा समझना हमारी बेवकूफी है। यानी खींचने के लिए यंत्रों की सृष्टि हो गयी है। खेत जोतने के लिए, सिंचाई के लिए, रोपाई के लिए, कटाई के लिए भी यंत्र काम में लाये जायेंगे। तब देखना मजा!'

- बाबूजी! अच्छा काम बुरे में बदल जाते देख अजीब-सा लगता है। मगर जो कुछ हुआ या होने वाला है उसको मद्देनजर रखकर वर्तमान को कैसे ठुकराया जा सकता है?

आप जिन लोगों की मदद करने के लिए निकल पड़े थे, क्या यथार्थ में उनकी मदद हो पायी? छोकरे लोग कुछ तो बकते रहेंगे ही। मैं न सूर्यम बाबू को दोषी मानता हूं न लक्षुम नायुडु को। उन लोगों ने कभी भी बुरी नीयत लेकर इस कार्य में कदम नहीं रखा था। एक पुण्य-कार्य समझकर उन्होंने इसमें भाग लिया था, जिनको आपके यज्ञ ने बुरी दिशा दिखायी।। उसमें फंस जाने के बाद सबके सब उसमें डूबते चले गये।

इतना कहकर वह थोड़ी देर के लिए चुप रहा। फिर बोला--बाबूजी! बहुत देर तक समझाने के बाद बोडिगाडु के साथ घर के सभी लोग चुप हो गये। मगर अकेले सीतारामुडु

पर मेरी बात का कोई असर नहीं पड़ा। वह अड़ा रहा। वह एक ही बात पर अड़ा रहा, 'बापू! तुम्हारी सारी बातें मैं सुन चुका। तुम, श्री रामुलु बाबू, गांव के बड़े बाबू और उनके साथी-संगी सब भले मानुष ही होंगे। भले ही बुरा काम न किया हो। बची-खुची इस जमीन के टुकड़ों को बेचकर नौकर बन जाने की जो सलाह मुझे दी गयी थी, वह भी मेरी भलाई के लिए ही होगी। मगर मैं यह जमीन नहीं बेचूंगा, नहीं बेचूंगा। साहूकार का जो कर्ज है, उसे मैं नहीं ठुकराता। उसे चुकाने की भरसक कोशिश जरूर करूंगा। मरते दम तक उनकी चाकरी करने के लिए भी तैयार हूं। मगर जब तक मेरे शरीर में जान है, तब तक मैं यह जमीन नहीं बेचूंगा।'

इस पर मेरे ताऊ ने कहा, 'तू ऐसा बोल रहा है, जैसे इस जमीन पर तेरे अकेले का ही हक हो।'

तब सीतारामुडु जोश में आकर बोला, 'यह हक की बात तुम्हारी जहन में तब क्यों नहीं आयी थी, जब इस जमीन को साहूकार को सुपुर्द करने के लिए कहा गया था?'

जब सारे लोगों ने इस पर एतराज किया तो अंत में वह बोला, 'बापू! मैं ज्यादा बोलना नहीं चाहता। फिर भी एक बात कहे देता हूं। अगर तुम जमीन बेच दोगे तो मैं तुम्हारी हत्या करके स्वयं भी मर जाऊंगा। यही मेरा फैसला है।'

हां, उसकी इन बातों से उसके अंतर की व्यथा को मैं समझ गया। तब मैंने कहा, 'बेटे! जानते हो, माता-पिता अपने बच्चे को पाल-पोसकर बड़ा क्यों करते हैं? पिंडदान की इच्छा से। श्राद्ध कर्म की चाह मन में लिये हुए। तुम्हारे हाथों में मेरे प्राण निकल जायं--यही मैं चाहता हूं। मगर उसके पहले एक काम हो जाना चाहिए...। कल के दिन श्रीरामुलु आने वाले हैं। वे बड़े धर्मनिष्ठ व्यक्ति हैं। शायद वे यही कहें कि कर्ज चुकाकर अपना धर्म निभाओ। अगर वे ऐसा कहें तो चाहे कुछ भी हो मैं जमीन बेचकर साहूकार का ऋण चुका दूंगा। तुम भी अपना फर्ज निभाओ।'

इतना कहकर अप्पल रामुडु चुप हो गया। अंतिम शब्द कहते हुए वह गद्‌गद हो उठा। वहां एकत्रित लोग उसकी वेदना के समभागी हुए। उसके बाद वह थोड़ी देर तक एक उन्मादी-सा दिखाई दिया। उसके हाथ का कागज फड़फड़ाने लगा तो वह होश में आया। लोगबाग उसे थके हुए-से लगे। किसी के मुंह पर उत्साह नहीं था। श्री रामुलु नायुडु गहरी सोच में बैठे हुए थे।

अप्पल रामुडु में क्षण मात्र के लिए एक आशा की रेखा खिंच गयी। मगर जब रामुडु ने एकटक अपनी आंखों में देखने वाले सूर्यम जी को अपने हाथ की तरफ देखने वाले मुसलाय को और स्याही पैड और उसके बीच फुर्ती से बार-बार दौड़ने वाले पटवारी को देखा तो वह समझ गया कि उनसे कुछ आशा रखना व्यर्थ है।

एक गहरी सांस लेकर आगे को बढ़ा। उन पत्रों पर अंगूठे की निशानी लगा दी। जब वह स्याही पैड के पास से उठा तो गोपन्ना की तनी हुई सारी नसें एकदम ढीली हो चुकीं।

चारों दिशाओं में एक बार देखा, जैसे वह बेफिक्र हो गया हो। उसके बाद रामुडु ने अपने बेटों और पोतों को बुला-बुलाकर अंगूठे की छाप लगाने को कहा।

जब यह सब काम पूरा हो गया तो रामुडु की तरफ सहानुभूति का एक ऐसा प्रवाह उमड़ पड़ा जिसमें गंदे नाले की बदबू भरी हुई थी।

उसके पिता ने सीतारामुडु को उठाया तो वह खड़ा हो गया। उसकी आंखें जैसे आग उगल रही थीं। लंबा-सा शरीर। काला काला-सा। सर के बाल जूड़े में बंधे हुए थे। उसने पत्र के पास जाकर उसकी तरफ बड़े गौर से देखा। गौर से देखने के बाद न जाने उसे क्या हो गया था कि चट से पीछे मुड़कर भीड़ को चीरते हुए चार कदम तेजी से चला, फिर दौड़ लगाते हुए अपने मुहल्ले की तरफ भागा। अप्पल रामुडु चिल्लाता रहा, 'अरे बेटे! सीतारामुडु! अरे बेटे!! एक बात मेरी सुनते जाओ।'

सीतारामुडु ने कुछ नहीं सुना। तीर की तरह निकल भागा। नुक्कड़ पर लोग बाग कुतूहलवश उसकी तरफ देखने लगे और एक दूसरे से पूछने लगे, 'क्या हुआ? क्या हुआ?' अप्पल रामुडु की पत्नी भी रोने-बिलखने लग गयी। 'तू चुप रह!' अप्पल रामुडु ने झिड़क दिया। थोड़ी देर के बाद वह बोला, 'मैं अभी जाकर देख आता हूं।' बड़े लड़के ने आग्रह किया, 'नहीं बापू। तुम अभी मत जाओ!' उसने अपना गमछा कंधे पर डाला और जाने को हुआ तो उसकी पत्नी ने रोक दिया। उस परिवार में बड़ा द्वंद्व मचा हुआ था। यह हड़बड़ देखकर तीन चार नायुडु दौड़ते हुए गये और लट्ठों से लैस होकर लौटे। उनकी चाल-ढाल देखकर चमारों में से कुछ लोग उठे और बोले, 'बाबू साहब! आप आवेश में आकर कुछ मत कीजिये।'

इतना सब कुछ हो गया--तब जाकर श्री रामुलु नायुडु को लगा कि वहां कुछ हो रहा था।

इस पर श्री रामुलु नायुडु के चेहरे पर मायूसी के बादल छा गये। वैसे उनका चेहरा सदा मुस्कानें बिखेरता रहता।

वे उठकर आगे बढ़े और कुछ भर्राये हुए स्वर को ठीक करते हुए बोले, 'भाइयो! कोई भी जल्दबाजी न करें। मेरी बात सुनें।'

श्री रामुलु नायुडु थर-थर कांप रहे थे। उन्हें कांपते हुए देखकर लोग भी भयभीत हो गये। भयभीत लोगों को स्थिर और लक्ष्मुम नायुडु को शांत होकर बैठे हुए देखकर उन्हें बड़ा धैर्य हो गया।

'वो देखो, आ रहा है।' चमार बस्ती की तरफ देखते हुए लोगों ने कहा।

'उसके हाथ में क्या है?'

'हाथ में कुछ नहीं। कंधे पर कुछ भरा हुआ बोरा है।'

आगे बैठा हुआ लक्ष्मुम नायुडु पीछे चला गया।

बाकी लोग आगे आकर देखने लग गये।

सीतारामुडु ने थोड़ी देर से ही बोलना आरंभ किया, 'अरे बापू अप्पल रामुडु! ज्योंही

तुमने कागज पर अंगूठे की टीप लगा दी, त्यों ही तुम्हारे-मेरे बीच बाप-बेटे का रिश्ता खतम हो गया। यह बात मैं पहले ही बता चुका था।'

कल रात मैं... कल रात को मैंने तुमसे बहुत कहा, मगर तुमने मेरी एक न सुनी?

क्यों नहीं सुनी? तुमने सोचा, 'मैं बाप हूं, यह मेरा बेटा है। मेरा बेटा होकर मेरी बात से क्यों मुकरेगा? नहीं मुकरेगा!'

'बेटे को बाप की बात ठुकरानी नहीं चाहिए। सच है। मेरे भी एक बेटा है। वह भी नहीं ठुकरायेगा। यह लो, मेरी बात का प्रमाण!' यों कहते हुए दौड़कर आगे को बढ़ा और कंधे पर से बोरा एकदम नीचे सरकाया। रस्सी ढीला करके उसे उलट दिया।

अप्पल रामुडु के पांवों पर 'टक टक' का शब्द करते हुए एक कटा हुआ सिर और छोटे-से शरीर का भाग नीचे जमीन पर गिर पड़े। खून से भीगा वह छोटा सिर धूल में लोट गया। वह कोमल शरीर-नंगा और काला-सा था। दोनों हाथ जमीन को छू रहे थे।

अत्यंत भीभत्सतापूर्व उन अवयवों को देखकर लोग स्तंभित रह गये। भयभीत हो गये। चकित रह गये। ''दैया रे! बाप रे! यह क्या अनर्थ हो गया? दुहाई मां दुर्गा! बहुत बुरा हुआ।' कहते हुए लोग आगे को बढ़े, जैसे उनके शरीर उनके वश में नहीं थे। बड़ा कोलाहल मच गया।

अप्पल रामुडु जहां खड़ा था, वहीं काठ बनकर खड़ा हो गया। झुलसाने वाली चिनगारियां जैसी उसके बेटे की नजरें, वज्रपात की तरह लगने वाली बातें--जड़वत् खड़े अप्पल रामुडु के शरीर को या उसकी आत्मा को कोई तकलीफ पहुंचा रही हों, ऐसा कोई प्रमाण नहीं था।

सीतारामुडु बोल रहा था, 'मैंने तुम से बहुत कहा, तुम्हारी आंख नहीं खुली। नम्र होकर बोला। तुमको मारने की धमकी दी। स्वयं मरने की भी धमकी दी। तुम ने न सुनी। क्यों नहीं सुनी?'

इसलिए नहीं सुनी कि तुमको लोगों की तारीफ चाहिए। अप्पल रामुडु बड़ा सज्जन आदमी है। बात का पक्का है। बड़ा ही सीधा सादा मनुष्य है। ऐसा नाम चाहिए तुमको। भाड़ में जायें तुम्हारे बाल-बच्चे। क्या देखकर तुमको इतना घमंड था? क्या तुम बड़े धर्म पुरुष हो? इस कलियुग में धर्म था कहां? फिर भी धर्म स्थापनार्थ निकले थे। अरे बापू! मैंने बहुत कहा तुमसे, अपने बच्चों का, अपने परिवार का भी कुछ ख्याल रखो। तुमने आखिर किया ही क्या था जिसे न तुम देख सकते थे, न लोग! मगर मैंने जो काम करके दिखाया, वह सब के सामने है, हर कोई उसे देख सकता है। तुम भी देख लो। 'उसने भूमि की तरफ दिखायाँ था। अप्पल रामुडु सिर झुकाये हुए बैठा था, ज्यों का त्यों।

तुमने हम लोगों को मरते दम तक गुलामी में रखना चाहा। तब की बात अलग थी, जब तुम इसके बारे में कुछ भी नहीं जानते थे। मगर अब आज के माहौल को अच्छी तरह समझ चुकने के बाद भी तुम फिर उसी पुरानी लीक पर चलने के लिए मुझे मजबूर कर रहे थे। यह बात मुझे कतई मंजूर नहीं थी। मुझे अपने बेटे पर पूरा विश्वास था। वह गुलामी

की जिंदगी पसंद नहीं करेगा। मेरा बेटा किसी का नौकर-चाकर भी नहीं बनेगा।

इसीलिए मैं दौड़कर गया था। 'बेटे! तू गुलामी पसंद करेगा? तू गुलाम बनकर जिंदगी बसर करेगा? नहीं? तो मरने के लिए तैयार है? आज मर गया तो कल तक दो दिन हो जायेंगे। आ! मैं तुझे मारना चाहता हूं।' वह दौड़ते हुए मेरे पास आया। चट से मैंने उसके दो टुकड़े कर दिये। कटार वहां फेंककर यहां दौड़ा-दौड़ा आ गया।'

'तुम भी पिता हो, मैं भी पिता हूं। बताओ, इन दोनों में कौन महान है?'

यों कहते हुए सीतारामुडु रुक गया। अपने पोते के मृत शरीर के पास बैठने जा रहे अप्पल रामुडु से अपनी नजरें हटाने के लिए सीतारामुडु ने लोगों की तरफ देखा। सीतारामुडु को देखकर लोग बहुत ही व्यथित हुए। सब को बड़ी टीस हुई। एक फीकी हंसी उसके चेहरे पर मंडरायी। वह बोला, 'बाबू साहब! तुम लोग घबराओ मत यह सीतारामुडु कोई ऐसा व्यक्ति नहीं, जो लोगों का अहित करने का इरादा रखता हो। मैं ऐसा व्यक्ति होता तो अपने एकमात्र पुत्र को यों मौत के घाट नहीं उतारता।'

उसने लोगों को शांत करने का प्रयास किया। मगर लोग तितर-बितर होने लगे। हाथ में लट्ठ लिये वहां खड़े व्यक्तियों को देखकर उसने कहा, बाबू! जल्दबाजी तुम लोग नहीं करना। मैं मौत से नहीं डरता। मैं फांसी पर चढ़ने के लिए तैयार हूं। मुझे अगर तुम लोग मारोगे तो इससे गांव में हलचल मच जायेगी। बड़ी हानि हो जायेगी। निरीह बाल-बच्चों की आह मुझे लग जायेगी, यह मैं नहीं चाहता।'

इसके बाद वह मंडप की तरफ मुड़ा। उसकी नजरों ने श्रीरामुलु नायुडु को ढूंढ़ निकाला। उसकी तरफ देखकर उसने कहा, 'श्री रामुलु बाबू! तुमसे मुझे बड़ी चिढ़ थी। कब? कभी थी। बहुत पहले। मगर अब नहीं। बिलकुल नहीं। यकीन करो। पता है, क्यों? इसलिए कि तुम बड़े भोले मानुष हो। तुम यह चाहते हो कि सब लोग तुम्हारी बात मान लें। और वे मानते थे जरूर। मगर इस पूरी व्यवस्था पर जिनका पूरा आधिपत्य है, वे कौन हैं, उनको तुम जानते हो? वे दोनों तुम्हारे सामने हैं--एक तो पटवारी हैं दूसरे पटेल हैं। तुम्हारा नाम तब तक क़ायम रहेगा, जब तक तुम लोगों के लिए अच्छा काम करते रहोगे और वह भी पटवारी और पटेल के अपने आप कुछ कर सकने की क्षमता प्राप्त करने तक। उसके बाद तुम लोगों के मार्ग अलग-अलग हो जायेंगे। बाद में किसी को कुछ पता ही नहीं चलेगा कि तुम कौन हो और वे कौन हैं। यह बात बाद में समझ में आयेगी।'

पटेल की तरफ उन्मुख होकर सीतारामुडु उन्मादपूर्ण हंसी में बोला, पटेल बाबू! बहुत दिनों बाद तुम्हें कुछ काम करने का मौका मिला है। सुना है, श्री रामुलु बाबू ने जिस रोज इस मंडप का उद्‌घाटन किया था, उस दिन तुमने भी एक बात कही थी। खैर, अब बताओ, मुझ पर रिपोर्ट लिखकर भेजोगे या खून करने का मेरा केस माफ कर दोगे।'

यों कहते हुए सीतारामुडु जहां खड़ा था, वहीं उस न्याय मंडप के सम्मुख जमीन पर निढाल हो गया। धर्म पालन के उपदेश कब तक...?

राख को चीरकर असली चिनगारी के ऊपर आने तक... और तब तक, जब तक सब के सब तुम्हारा कहा मान लें!

फिर उसके बाद...?

फैसला

'इस झगड़े का निबटारा करना मेरे बस की बात नहीं।' यह कहते हुए सुंदररामय्या की पत्नी कुछ चीजें फेंककर चली गयी। वे सीधे सुंदररामय्या की गोद में जाकर गिरीं।

सुंदररामय्या ने उन चीजों की तरफ ध्यान से देखा। वे पांच पैड थे, जो बच्चों के इम्तहान के वक्त काम आते हैं। वे सुंदर थे। उनमें चार पैड तो एक ही मां की चार संतानों की तरह दीखे; एक पैड कुछ अलग-थलग सा दिखाई दिया। आकार में कुछ बड़ा था। उस पर जो कागज चिपकाया हुआ था, देखने में सुंदर था और कीमती भी। उसके चारों कोनों में कैलिको से बनी कार्नर पैकेट भी थी।

सुंदररामय्या के चार लड़के थे। सबसे छोटी लड़की थी। तीनों बड़े लड़के उच्च विद्यालय में पढ़ते थे।

सुंदररामय्या ने जब अपना सिर ऊपर उठाकर देखा तो दरवाजे के पास दो छोटे बच्चे दिखाई दिये। अपने पिता को शांत चित्त देखकर वे अंदर चले गये। जब पिता ने उनके आने का कारण पूछा तो बच्ची ने बात शुरू कर दी और लड़के ने पूरा विवरण दे दिया।

बात यह थी कि दूसरे भाई को स्कूल में पैड बनाना सिखाया गया। वे पैड स्कूल में तीस पैसे में बिक गये। बड़े ने अंदाजा लगाया कि अठन्नी में आधा दर्जन बनाये जा सकते हैं। बाजार में चालीस पैसे में एक बिक रहा था। मां से आठ आने मिले। संख्या में वे कुल पांच थे, इसलिए पांच ही पैड बनाने की सोची। एक पैड में कुछ ज्यादा पैसा लगाया गया तो वह एकदम बहुत बढ़िया बना।

बड़े लड़के की दलील थी कि एक तो वह बड़ा है और दूसरे ऊंचे क्लास में भी पढ़ रहा है, इसलिए वह पैड उसे मिलना चाहिए। दूसरे ने कहा, 'नहीं, वह मुझे मिलना चाहिए।' मां का फैसला था कि वह बड़े को मिलना चाहिए। जब दूसरे ने कहा कि मुझे चाहिए तो उसने कहा—'ठीक है, तू ही ले ले।' मगर फैसला नहीं हो सका। इसलिए फैसले के लिए मुकदमा पिता के सामने आ गया।

सुंदररामय्या की सूझबूझ के सामने यह कोई बड़ी समस्या नहीं थी। फिर भी उन्होंने गहराई में जाकर सोचा-विचारा।

बड़े लड़के का नाम सुंदररामय्या के पिता के नाम पर रखा गया था। इसलिए बच्चे की यह राय हो गयी कि पिता जी उसे बहुत चाहते हैं। दूसरे का नाम उसकी माता के पिता के नाम पर रखा गया, इसलिए मां का प्यार उसको अधिक मिलता है। यह सुंदररामय्या

की बहन के मन की बात थी। उसके पति के स्वर्गवास के बाद वह सुंदररामय्या के घर ही रहती थी।

मगर सुंदररामय्या को यह कतई पसंद नहीं था कि बच्चों के मन में इस तरह के भाव पनपे। उसकी अदम्य इच्छा थी कि उसके बच्चे मिल-जुलकर ऐसे रहें जैसे त्रेतायुग में श्रीरामचन्द्र जी अपने भाइयों के साथ रहा करते थे।

यह सब सोच-समझकर इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि इसमें जल्दबाजी ठीक नहीं है।

उन्होंने छोटे बच्चे से कहा, 'जाकर अपने सब भाइयों को बुला लाओ।'

उसके जाने के बाद बच्ची से कहा, 'तुम जाकर अपनी मां को बुला लाओ।'

बड़ा लड़का भरा-पूरा और गोरा-सा था। देखने में सुंदर भी। उसकी आंखों में अक्लमंदी झलकती थी। खाद-पानी और देखभाल से पनपे आम के पौधे की तरह हरा-भरा दिखाई देता था। छोटा कुछ मोटा-सा था और देखने वालों को उसे देखकर बड़ा लड़का होने का भ्रम होता था। बंद होंठों से उसके जिद्दी होने का, खुली आंखों से, उसके मन की एकाग्रता का एहसास होता था। उसे देखते ही हरेक के मन में यह भावना हो जाती थी कि इससे कुछ बचकर रहना जरूरी है।

सुंदररामय्या का चेहरा देखकर बड़े लड़के के अभिमान को कुछ धक्का-सा लगा और फौरन ही वह उसे छिपाने की चेष्टा करने लगा। उसके खड़े होने की भंगिमा में स्थिरता नहीं थी। मुस्कान में कुछ खोखलापन नजर आ रहा था। मगर उसके अंदर किसी कोने में आत्मविश्वास की झलक अवश्य थी।

दूसरे लड़के के दांत, आंख, जबड़े और पीछे को मुड़े हुए उसके हाथ ऐसे स्थिर दिखाई दे रहे थे, जैसे मंदिर के विशाल स्तंभों पर पीछे को मुड़ी मूर्तियां हों। ऐसी मूर्तियों की कमर पर कोई भारी वस्तु रहती है, मगर उसकी कमर में ऐसा कुछ नहीं था। फिर भी कुछ झुका हुआ-सा था और चेहरा बहुत खुरदरा था।

सुंदररामय्या की पहले से ही ऐसी राय बनी हुई थी कि यह लड़का बात-बात में गंभीर हो जाया करता है। बाकी बच्चे सभी एक-एक कोने में ऐसे तमाशबीन बनकर खड़े हुए थे कि देखें, अब क्या कुछ होने को है। सुंदररामय्या की पत्नी दरवाजे के पास गंभीर मुद्रा में खड़ी थी, अपने होंठ भींचे हुए। सुंदररामय्या ने वहीं खड़ी अपनी बहिन की तरफ नहीं देखा था। मगर सुंदर की बहन उस पूरे मामले को ऐसे देखे जा रही थी, जैसे भरी हुई अदालत में जज के आसन पर एक गरीब-गंवारू बैठा हो।

सुंदररामय्या ने सब की तरफ एक नज़र दौड़ाई। मुस्कराते हुए दूसरे लड़के की तरफ अनदेखा-सा देखते हुए कहा, 'अच्छा! पहले तुम सब लोग अपनी-अपनी राय बताओ, फिर मैं अपनी राय बताऊंगा।'

कोई कुछ नहीं बोला।

सुंदररामय्या ने पहले सोचा—बड़े लड़के से कहे कि पहले वह अपनी राय बताये। फिर

राय बदलकर कहा—'छोटी से पूछ लेते हैं।'

आदेश जारी करने के बाद बहस ठीक ही चल रही थी। छोटी कहे जा रही थी। कुछ देर बुदबुदाती रही। फिर हंस पड़ी। लजा गयी। झट वहां से भाग निकली।

अंत में छोटे लड़के ने बताया कि 'चूंकि मैं छोटा हूं, इसलिए चीज मुझे मिलनी चाहिए।'

'तुम छोटे कैसे हो? तुमसे छोटी तो तुम्हारी बहन है। इसलिए यह पैड उसको दे देंगे।'

'वह तो पहली में है। पैड से वह क्या करेगी?'

'तुम भी तो तीसरे में हो। वह तुम्हें किस काम आयेगा?'

'अगले साल काम आयेगा।'

सुंदररामय्या अंदर ही अंदर प्रसन्न हुआ कि उसका चौथा लड़का भी कुछ होशियार है।

तीसरा उससे भी समझदार निकला। उसकी बहस मजेदार थी।

'दोनों भाई बड़े हैं। अगर वे चाहें तो दूसरा बना सकते हैं। छोटा और छोटी--दोनों को इसका कोई उपयोग नहीं है। इसलिए अच्छा तो यही होगा कि वह पैड मुझे दे दिया जाय और हां, अगर बड़े भाइयों में से किसी को देना चाहें तो मैं कहूंगा कि यह दूसरे को मिलना चाहिए।' मुझे चाहे जो भी मिले, मैं ले लूंगा। क्योंकि मुझे पैड बनाना आता नहीं था। मैंने गोंद मात्र फैला दिया था। यह कोई बड़ा काम नहीं था।'

दूसरे ने संक्षेप में बताया, 'भैया ने आइडिया दिया। मां ने पैसे दिये। पूरा काम मैंने किया था। बस, मुझे इतना ही कहना है।'

बड़े ने कहा, 'मुझे उस पैड पर कोई मोह नहीं है। मगर दूसरे ने कहा कि चूंकि उसने पैड बनाने में हाथ बंटाया है, इसलिए वह उसे मिलना चाहिए, इससे मुझे गुस्सा आ गया है। इसलिए मैंने कहा कि वह पैड मुझे मिलना चाहिए। इसकी पूरी तरकीब मेरी है और मां ने पैसे देकर अपना सहयोग दिया।'

'मां से कोई भी पैसा मांगे वह दे देती है। छोटा भैया बाजार से सारी चीजें खरीदकर लाया। बनाया भी उसने ही। इसलिए पैड उसको मिलना चाहिए।' तीसरे की दलील थी।

'बड़े भैया ने उसकी तरकीब न बतायी होती तो ये पैड बनते ही नहीं।'

'केवल तरकीब बता देने से झट से पैड तैयार नहीं होते।'

सुंदररामय्या जज की तरह बोले, 'आर्डर! आर्डर!!'

जब सब लोग चुप हो गये तो पैड की तरफ देखते हुए सोच में पड़ गये।

जाने क्यों अपनी पत्नी और बहन की राय 'जानने की आवश्यकता नहीं समझी।'

वैसे तो बगैर पूछे किसी को अपनी राय देने की उसकी पत्नी की आदत नहीं थी। लेकिन उनकी बहन की आदत न पूछने पर भी अपना उद्देश्य प्रकट करने की थी। उन्होंने कहना शुरू किया।

'हां सुनो, मैं भी अपनी राय दूंगी। यह पैड न्यायतः...'

'बड़े को मिलना चाहिए।' दूसरे लड़के ने बीच में ही अपनी बात ठूंस डाली।

उसका रुख परखने के बाद सुंदररामय्या के विचारों में कुछ खलबली-सी मच गयी। सीधे उसकी आंखों में देखते हुए... उन्होंने पूछा, 'ऐसा क्यों?'

'इसलिए कि घर का बड़ा है। आपके बाद...' कोई भी सुंदररामय्या की तरफ देख नहीं रहा था।

'हां, यह भी सच है, बड़ा तो बड़ा ही है। उसके बाद ही तुम लोगों की गणना आती है। इसलिए बड़े को तरजीह देनी चाहिए।' बुआ ने कहा।

छोटा लड़का बड़ा अजीब है। कहते हैं न कि हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और। यह भी ठीक वैसा ही। जब वह अपनी बुआ के मुंह की तरफ देख रहा था तो ऐसा लग रहा था जैसे जंजीर से बंधा हुआ कुत्ता आगे को कूदते हुए भौंकने लगता हो।

सुंदररामय्या की पत्नी को बड़े की तरफदारी की बात जंची नहीं। अपनी ननद को टोकते हुए बोली, 'हां, रीति-रिवाज के अनुसार बड़े का धर्म, बांटने का है। हिस्सा उठाने का काम छोटे का है।'

बुआ कुछ बोल ही रही थी कि चौथे ने कहा, 'तब मुझे तो चुनने का अधिकार है।'

तीसरे ने कहा, 'तेरा नहीं, यह अधिकार छोटी बहन का है।'

बच्चों के लौकिक ज्ञान पर सुंदररामय्या को कुछ खीझ-सी हुई। बड़ों को ध्यान में रखकर छोटों से कहा--'तुम लोग चुप रहो।'

सबके सब चुप हो गये।

सुंदररामय्या को उसकी बात पसंद आयी।

'ठीक है। सबसे छोटा अपना पैड उठायेगा।'

'हां उसने उठा लिया। सादा पैड उठा लिया।' दूसरे ने कहा।

वह चकरा गया।

'उसे कैंसिल कर दिया, अब दुबारा उठाता हूं...। बस मुझे यह कैलिको पैड चाहिए।' उसने बड़े भैया की तरफ यों देखा जैसे कि उसने मैदान मार लिया हो। वह आगे बढ़ा।

दूसरे ने कहा, 'ठहर जा!'

वह ठहर गया।

बुआ ने दूसरे से कहा, 'उसे क्यों रोकते हो। लेने दो।'

दूसरे लड़के ने सुंदररामय्या की तरफ देखा।

सुंदररामय्या ने लाचार होकर छोटे से कहा, 'तुम चले जाओ।'

बड़े ठाट से, एक कर्मयोगी की तरह मुस्कराते हुए वह ऐसे चला गया, जैसे यह कह रहा हो कि 'कोई बात नहीं।'

बड़े के मुंह की तरफ देखते हुए तीसरे ने यों हंस दिया, जैसे उसे चिढ़ा रहा हो। अगर वहां सुंदररामय्या उपस्थित नहीं रहते तो दोनों में बहुत बड़ा झगड़ा हो गया होता। सुंदररामय्या

को बेसब्री का एहसास होने लगा। उसके मन में तरह-तरह के विचार उठने लगे।

'लाटरी उठायें तो कैसा रहेगा?' एक बार मन में विचार आया। सारे पैड ले लेकर कहीं एक जगह इकट्ठे रख दिये जायं तो? शायद उसकी पत्नी कह दे कि सारे पैड जला दो। छुट्टी हो जायेगी। फिर सोचा, 'कैलिको वाला पैड एक और बना दें तो? स्वयं एक अच्छा खासा बनाकर बड़े के हाथ में रख दिया जाय। सुंदररामय्या को छोटी को देना तो औरतों की बात-सी लगी।

'एक पैड ऐसा क्यों बनाया गया?'

'वह आइडिया भैया की थी।'

'छोटे भैया ने तो कहा था कि सब एक जैसे बना लेंगे।'

सुंदररामय्या जैसे-जैसे सोचते गये, उसके हाथ हार ही लगने लगी। परेशानी बढ़ती गयी। सोचने लगे। खूब सोचने लगे। कोई हल नहीं मिल रहा था।

इस बीच बच्चों में बहस चलने लगी।

चौथा लड़का डींग मारने लगा कि अगर मैं चाहूं तो ऐसे पैड दस बना सकता हूं। तीसरे ने प्रश्न किया, 'फिर बनाते क्यों नहीं?' चौथे ने उत्तर दिया, 'बनायेंगे, बनायेंगे, देखते रहना!' तीसरे का सवाल, 'तू! तू बनायेगा?' 'हां हां'--चौथे ने उत्तर दिया।

फिर बुआ की बहस शुरू हुई। वह बोलती जा रही थी, 'दूसरा बड़ों की कदर करना नहीं जानता। आज जो अपने भाइयों की परवाह नहीं की, आगे वह अपने पिता की बात मानेगा क्या? वह जरूर बिगड़ जायेगा। उसका कोई भविष्य नहीं रहेगा। यह सोलह आना सच है।'

अंत में वह बोली, 'दूसरों को अच्छी चीज देकर अपने लिए बुरी चीज जो रख लेता है, वह बड़ा पुण्यवान है। जो पुण्य करेगा। वही साथ जायेगा।'

'पैड के बिना!' दूसरे ने कहा। उसकी आवाज कुछ अजीब-सी थी।

सब की दृष्टि उस पर पड़ी।

वह सीधे पिता के पास चला गया और उसने सारे पैड हाथ में ले लिये।

'बुआ जी! इधर देखना, कैसे मैं ये पैड बांटता हूं... भैया इसका दाम बाजार में चालीस पैसा बोल रहा था, मगर पच्चीस पैसा मात्र ही इसका दाम है। मां ने आठ आने पैसे दिये, उसके बदले में भैया को दो पैड मिलने चाहिए। भैया ने जो आइडिया दी थी उसके बदले में एक पैड उसको और मिलेगा। छोटे ने जो मदद की थी, भले ही वह ज्यादा नहीं थी, फिर भी उसको एक पैड, मैं अपने दो पैडों में से दे रहा हूं। मगर हां, यह कैलिको वाला पैड मेरा अपना है।'

यह बोलते हुए वह थोड़ी दूर चला गया। वहां रुककर वह अपनी बुआ जी को निहारता रहा। उसके होंठ कांप रहे थे। उसकी जुबान एकदम तालू से सट गयी। मुंह से एक शब्द भी नहीं निकल पा रहा था। ठीक शब्द उसको याद नहीं आ रहे थे। इस पर उसको अपने

ऊपर गुस्सा आने लगा।

'पहले हमने भैया से बांटने को कहा। मगर वह बांट नहीं सका। मां बांट सकती थी, मगर वह बांट नहीं पायी। पिताजी में भी बांटने की शक्ति थी, मगर पता नहीं क्यों, वे असमंजस में पड़ गये। मगर तुम हो कि अपने आप बांटने आयी--जो बांटेंगे, वे लोग पापी हैं--हमसे यह बात तुमने दो-एक दिन पहले कही थी। तुम बड़ी हो। 'तुम को नरक मिले'--मैं यह नहीं चाहता था। इसलिए बांटने का कार्य संपन्न करके मैंने पाप अपने हिस्से में बांध लिया है।'

यों कहते हुए वह बाहर के कमरे में चला गया।

चारों ओर नीरवता छा गयी। सब के सब काठ के पुतले बनकर देखे जा रहे थे।

'देखी उसकी करतूत?' अपनी ननद के आक्रोश भरे शब्द सुनकर सुंदररामय्या की पत्नी ने एक बार उसकी तरफ देखा, फिर पति की तरफ। अलसायी बोझिल पलकें और सूखा, मुरझाया चेहरा लिये हुए सुंदररामय्या नीचे की तरफ़ देख रहे थे।

दुख-दर्द

अगहन के बाद का चांदमास। सुबह का वक्त। उसके दूसरे ही दिन तीज* का त्यौहार था। चारेक बड़े मकानों को छोड़कर गांव के किसी घर की दीवारों में सफेदी नहीं की गयी थी। गांव और चमार बस्ती के बीच जो जमीनें थीं, वहां हरे-भरे खेत लहलहाते दिखाई देते थे, मगर इस साल वहां कुम्हड़े की कुम्हलायी हुई एक पौध को छोड़कर कुछ भी नहीं था।

चमारों की बस्ती। घर के सहन में छह घन फुट के घेरे में फैली धूप में बैठा हुआ था पैडय्या। उसके इर्दगिर्द थे—उसके बड़े भाई के बच्चे। उसके भाई ने हाथ-मुंह साफ करके भगवान की तस्वीर के सामने सिर नवाकर प्रणाम किया। उन लोगों के सामने थोड़ी दूर पर एर्रेम्मा खड़ी हुई थी।

'तो क्या तू उसी बात पर टिका है?' पैडय्या की तरफ घूमकर उसने कहा।

एर्रेम्मा की उम्र यही चालीस-बयालीस की होगी, मगर वक्त के झोंकों से झुलस जाने की वजह से पचास से ऊपर की लग रही थी। वह सीधे अपने दामाद की आंखों में देख रही थी। दामाद था कि झुके हुए सिर को ऊपर उठाने का नाम नहीं ले रहा था।

'अगर तेरी यही राय है तो साफ बता दे। मैं चली जाऊंगी।' एर्रेम्मा फिर बोली। अपनी आवाज में भरसक नरमी घोलते हुए उसने यह बात पूछी थी। पैडय्या ने एर्रेम्मा को इतने ठंडे लहजे में बोलते हुए इसके पहले कभी नहीं सुना था।

पैडय्या की उम्र पच्चीस साल की भी न होगी। किंतु शहर जाने के बाद आदमी जरा ऊंचा-सा हो गया। चेहरा-मोहरा कुछ साफ नजर आ रहा था। कट-बनियान और धारीदार लुंगी पहने हुए था। उसके इर्द-गिर्द उसके भाई के जो बच्चे थे, सबके सब काले-कलूटे, नंगे बदन, मुंड़े हुए सिर के थे। एकदम बदसूरत। एर्रेमा ने उनकी तरफ एक नजर दौड़ायी और सोचा, 'चलो, पेट भर खाना तो मिल रहा है इनको। देखने में ठीक हैं।'

पैडय्या कुछ नहीं बोला। वह उसके पांवों की तरफ उसके टेढ़े-मेढ़े अंगूठों की तरफ देखता रह गया। गांव में चहल-पहल थी। लोग अपने अपने काम पर आ-जा रहे थे। धोबी कपड़े लेकर घाट की तरफ जाने की तैयारी में लगे हुए थे।

'तो क्या मैं चली जाऊं?' अपने स्वर को जरा ऊंचा करके एर्रेम्मा ने पूछा।

---

* आंध्र प्रदेश में इसे 'भोगि' कहा जाता है। इसके दूसरे ही दिन 'मकर संक्रांति' का त्यौहार है।

अबकी बार बंगारम्मा से चुप नहीं रहा गया। वह चबूतरा पोत रही थी, मगर उसके कान तो इधर ही लगे हुए थे। अपना काम रोककर झट से वह वहां आ गयी।

'क्या मैं चली जाऊं' 'क्या मैं चली जाऊं' की रट लगाये हुए हैं। धमकी किसको दे रही है? हमने तुझे न्यौता देकर तो नहीं बुलाया था। मैंने बुलाया था? मेरे बेटे ने बुलाया था? किसके बुलाने पर तू यहां आ टपकी है? याद है न, उस दिन तू क्या बोली थी?... बोली थी कि जब तक मैं और मेरा बेटा तीन-चार बार तेरे घर का चक्कर न लगायेंगे और तेरे •ड़ेवाले पांव नहीं छुएंगे, तब तक न तू मेरे घर में पांव धरेगी न तेरी बेटी। अब क्या मुंह लेकर मेरी अंगनाई में पांव धरा? बोल, पहले तू आयी थी, या हम आये थे? लाज-शरम ताक पर रखकर तू स्वयं मेरे यहां आ गयी है। फिर भी हमने कुछ नहीं कहा। तूने बुलाया। हमने कहा--ठीक है। तुझे सीधे चले जाना चाहिए था। ऊपर से धमकी देने लगी। तू किसको धमका रही है?

बंगारम्मा जाकर अपने काम में लग गयी।

पैडय्या को बड़ी खुशी हुई कि बंगारम्मा ने बात आगे नहीं बढ़ायी।

न जाने एर्रम्मा किस धुन में थी कि वह भी जवाब में कुछ नहीं बोली थी। सारी बातें गुमसुम सुनती रह गयी।

कुछ देर बाद फिर बंगारम्मा ताना मारती हुई बोली, 'वह तेरी बेटी है। उसकी रग-रग में तेरा ही खून है। तभी तो सास की बात अनसुनी करके तेरे साथ चली आयी थी। मैं मानती हूं कि मेरा लड़का तेरा दामाद तो है, पर वह पहले मेरा लड़का है। तेरी बेटी तेरे लिए जितनी प्यारी है, मेरा बेटा भी मेरे लिए उतना ही प्यारा है। मुझे कोई एतराज नहीं है, ले जा अपने दामाद को।'

बंगारम्मा की बातें सुनकर एर्रम्मा ने एक दूसरी चाल चली। बोली, 'क्या तू बहू को अपने बेटे से अलग करना चाहती है?'

'वह काम तो तू पहले ही कर चुकी।'

'अगर मेरा इरादा यही होता तो तेरे दरवाजे पर मैं आती ही नहीं।'

बंगारम्मा ने देखा, एर्रम्मा ने बहुत कड़ककर जवाब तो दिया ही, साथ-साथ बड़े जोर से वह अपना हाथ भी हवा में झटकाती रही। बंगारी ने इस पर जल्दी-जल्दी अपना हाथ धो डाला।

पैडय्या के बड़े भाई चबूतरे पर बैठे हुए थे। उन्हें लगा कि ये दोनों फिर आपस में उलझ तो नहीं जायेंगी? उसने पहले अपनी मां से चुप रहने के लिए कहा फिर एर्रम्मा के पास गया और अनुनय के स्वर में बोला, 'अरी माई! मैं हांथ जोड़कर प्रार्थना करता हूं। अबकी तुम घर चली जाओ। हमने तुम्हारी बात ठुकरायी तो नहीं थी। हमने इतना ही कह दिया था कि उसकी मर्जी हो तो वह जरूर आयेगा। वह कोई छोटा बच्चा तो नहीं कि जोर-जबर्दस्ती की जाय। उसे जो बात ठीक लगे, खुद करेगा। अपनी तरफ से हम

जोर-जबर्दस्ती करें तो मामला उलझ जायेगा। मेरी बात सुनो और घर लौट चलो।'

नारायुडु ने हाथ जोड़कर कहा। एर्रेम्मा ने अपनी जिंदगी में ऐसी हार कभी नहीं खायी थी। उसे बहुत गुस्सा आया। फुंफकारते हुए पीछे मुड़ गयी।

थोड़ी दूर जाकर वह फिर पीछे मुड़ी और जोर से बोलने लगी, 'अरी ओ बंगारी! सुन मेरी समधिन! सुन ले! मैं फिर बोलती हूं--तू मेरी बेटी को अपने बेटे से अलग करना चाहती है। अगर तू ऐसा करेगी तो इस जनम में नहीं तो अगले जनम में तेरी बड़ी दुर्गति हो जायेगी। तू खाट ऐसे पकड़ेगी कि मौत बार-बार तेरे दरवाजे पर दस्तक देती रहेगी, मगर तू सीधे नहीं मरेगी। कुढ़-कुढ़कर मरेगी। आज मैं भगवान की सौगंध खाकर बोलती हूं कि तुझे कीड़े पड़ जायेंगे। मेरी बात पक्की मान ले। समझी?' यों कहती हुई पचास-साठ फुट की दूरी पर स्थित नयी गली के अपने घर की तरफ तेज कदम बढ़ाते हुए चली गयी।

'अरी जा जा! सत्तर चूहे खाने वाली भी अपने को सती-साध्वी बताती है। अगर तेरे-मेरे शाप-अभिशापों का असर रहता तो यह धरती कब की उलट गयी होती। अपना अनाप-शनाप बकना बंद कर दे।' बंगारम्मा कटे पेड़ की तरह भहरा पड़ी। फिर वह अपने काम में लग गयी

* * *

'रथोत्सव के छः महीने बाद संक्रांति का त्यौहार पड़ता है। मैं अपनी बेटी को हर छह महीने में एक बार अपने यहां ले जाऊंगी। भले ही तू उसकी सास क्यों न हो, तुझे मेरी बेटी को जाने से रोकने का कोई अधिकार नहीं।' एर्रेम्मा बोली।

'गांव का रिश्ता है। पर्व-त्यौहार के दिन तू जितनी बार चाहे ले जा सकती है। मैं मना थोड़े ही करती। तीन दिन के लिए रख लेना, चौथे दिन विदा कर देना। खतम।' बंगारी ने कहा।

'छः महीने में एक बार लड़की को मायका ले जाना लोक-रिवाज है। और वह भी खासकर रथोत्सव और संक्रांति के अवसर पर। गांव के रिश्ते में और पराये गांव के रिश्ते में लोक-परंपराओं के बारे में कोई फरक नहीं पड़ता। रिवाज रिवाज ही है।' एर्रेम्मा जोर देकर कहती।

'अगर लोक परिपाटी का इतना ही कायल है तो त्यौहार के एक दिन पहले आकर अपनी बेटी को ले जा और त्यौहार के बाद चाहे महीने भर बाद या दो महीने बाद भेज दे। मुझे कोई एतराज नहीं' बंगारी ने उत्तर दिया।

'मैं अपनी बेटी को कब ले जाऊं और कब वापिस भेज दूं, यह बताने वाली तू कौन होती है? जैसा मैं चाहूं, वैसा करूंगी। यह मेरी मर्जी है। यह कहने का तेरा कोई अधिकार नहीं कि फलाने दिन ले जाना, फलाने दिन भेज देना। बस!' एर्रेम्मा बरस पड़ी।

'अरी! जब वह भेजने के लिए राजी हैं तो आगे-पीछे का सवाल कहां उठता है।'

लोगबाग कहने लगे। बंगारी इस बारे में कुछ नहीं बोली। हां, वह इतना जरूर कह रही थी कि इस बुढ़ापे में घर का ढेर-सारा काम-काज करना मुझसे नहीं हो पा रहा है।

'मैंने अपनी बेटी का ब्याह उसके लड़के के साथ इसलिए किया था कि वह गृहस्थी का भार संभालेगी। चाकरी करने के लिए नहीं।' एर्रेम्मा ने एक नयी दलील पेश की।

पैडय्या शहर में हम्माल का काम करने लगा। एर्रेम्मा ने इसी बात को अहम मुद्दा बनाया। अगर वह घर पर रहता तो बंगारी को यह कहने का अवसर मिल जाता कि 'मैं क्या जानूं, पति-पत्नी एक दूसरे को छोड़कर नहीं रह सकते।'

त्यौहार के एक महीने के पहले वह आयी तो बड़ा हंगामा मचा दिया।

यह कहती--नहीं भेजूंगी।-वह कहती--देखती हूं कि कैसे नहीं भेजती... । मैं भी देखूंगी कि कैसे ले जायेगी... । यों रस्साकसी शुरू हो गयी। एक तरफ मां कहती--चल बेटी! दूसरी तरफ सास कहती--तू नहीं जा सकती! एक तरफ मां, दूसरी तरफ सास, सन्नेम्मा को खींचने लगीं। बस्ती के पूरे लोग इकट्ठे हो गये।

सन्नेम्मा मारे शर्म के सन्न रह गयी। जब वह जोर से चिल्ला उठी तो दोनों ने उसको छोड़ दिया। उसके बाद दोनों वीर नारियां एक-दूसरे से भिड़ गयीं। बाल नोच लिये। खाल उधेड़ ली। एक दूसरे पर पत्थरों की वर्षा हुई। वहां इकट्ठे लोगों ने जैसे-तैसे दोनों को छुड़ा लिया। अनुकूल स्थान न होने से एर्रेम्मा को अधिक चोटें लग गयीं। खरोचने की वजह से एकाध जगह खून बहने लगा। उसके बच्चे रोने-पीटने लगे। सन्नी से रहा नहीं गया वह भी उसके साथ चल दी।

सास ने साफ शब्दों में कह दिया, 'अब तू अपनी मां के साथ जा रही है न! फिर मेरे घर का दरवाजा अपने लिए बंद ही समझना!'

सन्नी के कंधे पर सिर रखकर उसकी मां चल रही थी। उसकी छोटी बहनें मां की साड़ी का पल्ला पकड़ कर चलने लगीं। सन्नी ने मन-ही-मन सोचा--ऊपर भगवान है, जो होगा सो होगा।

* * *

उस दिन शाम को बबूल पोखरे के कलिंग बांध के पास तीन लड़कियां घास छील रही थीं। उनमें एक प्रौढ़ अवस्था की थी। शायद उसने पहली बार बाहर कदम रखा था। चारों ओर विशाल समुद्र-सा फैला हुआ खुला मैदान था, जिससे उसे घुटन-सी हो रही थी।

'एक बात सुन सन्नेम्मा। यहां से चिल्लाये तो आवाज गांव तक पहुंच जायेगी या नहीं?' नीलि ने पूछा।

'अरी छोकरी। डरना नहीं, तुझे कोई यहां से उठा के नहीं ले जायेगा।' अंकेम्मा ने टोका।

'मुझे उठाकर कौन ले जायेगा, अगर उठाना भी हो तो तुझे या तेरी सहेली को ले

जायेगा। क्योंकि तुम दोनों फागुन की सुबह में चढ़ती धूप की तरह उमड़ती जवानी में खूब दमक रही हो। समझी?'

सन्नम्मा जोर से हंसती रही।

'अरी यह छोकरी बड़ी नखरेबाज है।' अंकी झल्ला उठी।

'गांव से तुम लोग इतनी दूर क्यों आ गयीं, यह मैं नहीं जानती हूं क्या...? बोलूं? इसलिए कि यहां से कोत्तपेट नजदीक पड़ता है। शाम को तेरा मर्द तुझसे मिलने के लिए इधर आता है। है न?' मुंह को चिड़िया-सी आगे करके उसने पूछा।

अंकम्मा और सन्नी ने इतनी जोर का ठहाका मारा कि पेट में बल पड़ गये। नीलि ने फिर से सवाल किया, 'सच सच बता, सन्नेम्मा! यहां से पुकारेंगे तो आवाज गांव तक पहुंच जायेगी?'

'पुकार के देख ले।'

'अगर नहीं पहुंची तो?'

'कोशिश करके देख तो ले।'

नीलि ने खड़े होकर गांव की तरफ देखा। उसे कोई भी आदमी नजर नहीं आया।

'किसको पुकारूं?' नीलि ने पूछा।

'दालिगाडु को।'

नीलि ने सन्नी की बात अनसुनी कर दी। दालिगाडु नीलि का पति था। जब उसकी उम्र नौ साल की थी तब उसकी शादी हुई थी।

नीलि ने जोर से आवाज लगायी, अरे ओ! पैडय्या मामा!'

अंकेम्मा खिलखिलाकर हंसती रही। सन्नी भी मंद मंद मुस्कानें बिखेरती रही। बोली, 'और जोर से चिल्ला!'

इस बार नीलि ने अपनी पूरी ताकत लगाकर जोर से पुकारा, 'अरे ओ पैडय्या मामा!'

'अरी... हां!' सन्नी ने जवाब दिया जैसे अमराई से चिड़िया बोले।

'मसखरी मत कर! वह देख भला। हौले-हौले आ ही रहा है।' नीलि ने कहा और झट से बैठ गयी।

'अरे बाप रे! सचमुच आ रहा है।' घबराती हुई बोली, फिर। नीलि का रंग-ढंग देखने में ऐसा नहीं लग रहा था कि वह दिल्लगी कर रही थी।

'क्या यह सच बात है?' अंकेम्मा ने पूछा।

'राम कसम। अगर तू खुद देख ले तो पता चलेगा।' बबूल बाड़ी पार करके आने लगा तो सोचा, कोई होगा। धारीदार कमीज और लुंगी पहने हुए घर से जब बाहर निकल रहा था तो देख चुकी थी। बस वही है।' नीलि ने कहा।

अंकेम्मा ने बड़ी उत्सुकता से उठकर देखा तो पैडय्या दीखा। फौरन बैठ गयी।

'हां, सच में!' सन्नी से बोली।

सन्नेमा न हिली न डुली।

'तो क्या हुआ, आने दे।' धीरे से बोली, बड़ी लापरवाही से।

मगर उसका हिया डोलने लगा।

एक मिनट बीतते-बीतते जैसे सयाने हो गये। कुछ देर मौन रहकर सोचती रही, फिर बोलीं, 'अच्छा भई! हम लोग चलें।' अंकेम्मा टोकरी लेकर खड़ी हो गयी। नीलि भी जितनी घास उसने छीली थी, उसे अपनी टोकरी में भरने लगी।

'तुम लोग मत जाओ।'

सन्नेम्मा की आवाज में कुछ कटुता थी। अंकेम्मा को गुस्सा आया। वह सन्नेम्मा पर बरस पड़ी, 'यह भी खूब है। तुम्हारी मां और उसकी मां के बीच में कुछ झड़प हो गयी तो बीच में इसका क्या दोष है? अपने मन का मैल निकाल दे।'

यों बुरा-भला कहकर नीलि के साथ ताड़ वृक्षों की बाड़ी में चली गयी।

सामने जब दो काले से पैर दिखाई दिये तो सन्नेम्मा का दिल धक-धक करने लगा। कांपते हुए हाथों को वश में करने लगी। अपनी घबराहट को छिपाने लगी। थोड़ी देर के बाद कुछ संभलकर नीचे झुकी हुई आंखों से ही बोल पायी--'फुरसत मिली?'

''दूर रहने वाले लोगों को तो बात करने की फुरसत नहीं मिलती। मगर सामने आये हुए लोगों से बात करने की फुरसत भी कुछ लोगों को नहीं हो, यह क्या बात है?''

पैडय्या एक ऐसी जगह देखकर घास पर बैठ गया कि कपड़े मैले न हों।

जगह देखकर बैठ जाने के पहले एक बार आंखें उठाकर सन्नेम्मा ने पैडय्या को देखा, फिर आंखें नीचे कर लीं।

'क्या बात है कि मुंह खुल नहीं रहा है।' पैडय्या ने कहा।

सन्नेम्मा फिर भी कुछ बोली नहीं।

रंग-बिरगी धारीदार सिल्क कमीज और प्रैस की हुई सफेद लुंगी पहने हुए था।

सन्नेम्मा की साड़ी बदरंग हो चुकी थी। धुली रहने के बावजूद ऐसी लग रही थी जैसे कई दिनों से उसकी धुलाई न हुई हो। उसके दायें हाथ में रबड़ की एक चूड़ी थी और बायें हाथ में एक लाल धागा बंधा हुआ था। ससुराल में रहती तो उसका रंग-रूप ऐसा कदापि नहीं रहता।

'मैं उतनी दूर से आया हूं और तू ऐसी चुप है कि बोलने से मोतियां झड़ जायेंगे।' पैडय्या ने कहा।

सन्नेम्मा साड़ी चाहे जैसी भी पहने, गले में कोई गहना भी न हो, पर उसका नाक-नक्श मन को मोह लेने वाला था। घर में कितने ही काम क्यों न हो, तबियत ही खराब क्यों न हो, पर सन्नेम्मा बाल संवारने में कपड़ा-लत्ता पहनने-ओढ़ने में कभी ढिलाई नहीं करती। पैडय्या उसको देखे जा रहा था और सोच रहा था कि संध्या की उस झिलमिल रोशनी में शहद के रंग की उसकी देह पर लाल किनारे वाली पीली साड़ी कैसे फबेगी जिसे वह

शहर से लाया था। वह चूड़ियां जो सूरज की किरण पड़ते ही सतरंगी होकर चमक उठेगी...।

'कितने दिन ठहरोगे?' सन्नी ने पूछा।

'तेरी मेहरबानी मुझ पर हो तो आज के दिन मिलाकर चार दिन रुक जाऊंगा। वर्ना कल ही निकल जाऊंगा।'

पैडय्या ने सोचा कि 'तेरी मेहरबानी' शब्द उसके मन को लग जायेगा।

मगर ऐसा कुछ नहीं हुआ।

'आखिर हुआ क्या था?' पैडय्या ने पूछा।

'मैं क्या बताऊं कि क्या हुआ था।' सन्नी ने कहा। उसने अभी तक आंख उठाकर पैडय्या को नहीं देखा। हां, उसने अपना चेहरा थोड़ा ऊपर उठाया था। स्वर में थोड़ी सी गर्मी आ चुकी थी।

'मेरे पत्र तुमको नहीं मिले थे क्या?'

'हर कोई यही कहता है कि झगड़ा हुआ कैसे? मगर क्यों हुआ, इसकी वजह कोई नहीं बताता।' पैडय्या कुछ रूठते हुए स्वर में बोला।

ऐसा लगा कि अपने मन में उठने वाली ढेर-सारी भावनाओं को सन्नी दिल खोलकर बता देगी। फिर उसने अपना विचार बदल लिया।

'यह मुझे भी मालूम नहीं था कि यह क्यों हुआ। हां थोड़ा-बहुत मुझे मालूम भी हो तो उसे बताना मैं अच्छा नहीं समझती।'

'सच बात बताने में अच्छे-बुरे का संकोच क्यों?'

'इसलिए कि एक तरफ जन्म देने वाली मां है, दूसरी तरफ असीम प्यार देने वाली सास। दोनों में से किसी का भी पक्ष लेना मेरे लिए ठीक नहीं।'

इस पर पैडय्या कुछ बोल नहीं पाया। थोड़ी देर तक मौन रहने के बाद वह बोला–'सांप-छछूंदर की-सी बात करोगी तो मुझे कुछ नहीं कहना है। पहले जो कुछ हो गया था, सो तो हो ही गया। फिर आज बड़ा हंगामा मच गया। मेरी तो हालत ऐसी हो गयी है कि आगे जाऊं तो कुआं है, पीछे जाऊं तो खाई है। अब तू ही बता कि मैं इस मामले में क्या करूं।'

पैडय्या ने सोचा कि इसका जवाब वह जरूर देगी। मगर उसने इसका भी उत्तर नहीं दिया। उसे बहुत गुस्सा आया। उसने कहा, 'अब मैं समझ गया। अगर तू कुछ भी बोलने से इनकार करती है तो इसका मतलब है, तुझे भी मेरी मां और मुझ पर गुस्सा है।'

सन्नेम्मा की आंखों में आंसू भर आये। घास छीलना बंद करके उसे टोकरी में भरने लगी। टोकरी भरने के बाद उसने भर्राई हुई आवाज में कहा, 'जैसा तुमको अच्छा लगे, वैसा करो। मैं औरत होकर क्या सलाह दे सकती हूं? अगर मैं अपनी तरफ से कहूंगी तो तुमको वैसा करना अच्छा नहीं लगेगा।' वह टोकरी हाथ में लेकर खड़ी हो गयी।

उसकी बातों से तो उसे बुरा नहीं लगा, मगर जब वह जाने के लिए खड़ी हो गयी तो उसे अच्छा नहीं लगा। जब से वह यहां आया, उसने देखा, उसकी मां, उसका भाई और आखिर उसकी पत्नी ने भी इस मामले को सुलझाने के बजाय और भी उलझा दिया और ऊपर से कहने लगे कि तुमको जो भी करना हो करो, बस! उस बात के लिए मुझे सजा दी जा रही है, जिसका मैं उत्तरदायी नहीं था। राह चलने वाला भी मुसीबत के वक्त मदद करने के लिए तैयार हो जाता है मगर यहां अपने ही सगे-संबंधी नाक भौ सिकोड़ने लगे हैं। वह झट से उठा और जाते-जाते बोला, 'ठीक है। मैं कल सवेरे चले जा रहा हूं। अब आगे मैं यहां कदम नहीं रखूंगा।' वह वहां से चलता बना।

आंसू भरी आंखों से सन्नी जहां की तहां खड़ी रह गयी।

पैडय्या जल्दी जल्दी कदम बढ़ा रहा था तो ऐसा लग रहा था कि वह हवा में उड़ा जा रहा है। उसका दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। वह यहां क्या पूछने आया था और आवेश में जाते-जाते उसके मुंह से क्या बात निकली थी।

उसे अपनी गलती का एहसास हो गया। फौरन पीछे मुड़कर सन्नी के पास चला गया। तड़बन्ने में अंकम्मा और नीलि उसे दिखाई दीं जो उनकी तरफ गौर से देख रही थीं।

उसका गला जैसे भर आया। बोला, 'एक बार तविटप्पा के घर आयेगी, रात को?'

स्वर में बड़ी दीनता थी। सन्नेम्मा को 'न' कहने की हिम्मत नहीं हो रही थी। फिर भी बोली, 'नहीं। तुम ही मेरे यहां आ जाओ।' सिर झुकाकर दूसरी तरफ देखते हुए बोली।

पैडय्या अब नहीं रुका। वह चलने लगा। पीछे मुड़कर भी नहीं देखा। तीन महीने में एक बार आ जाता और तीन दिन रहकर चला जाता। पिछले तीन साल से यही क्रम चला आ रहा था, वह शहर में, सन्नी गांव में। दोनों सहेलियां जब उसके पास आयीं, तो वह आंसू पोंछ रही थी।

* * *

दीया-बत्ती जलाने के समय तक सन्नी घर पहुंच गयी। घास आधी टोकरी भी नहीं भरी थी।

'यह क्या? घास छीलने तू कब की गयी, और आधी टोकरी भी नहीं लायी। क्या बात है?' एर्रम्मा ने कड़ककर पूछा।

सन्नेम्मा एकदम आवेश में आ गयी।

'मैं तुम्हारे घर नौकरानी का काम करने नहीं आयी, न ही तुमको और तुम्हारी बच्चियों को खिलाने-पिलाने। तुम्हारे बुलाने पर मैं मेहमान बनकर यहां आयी थी। अगर तुमको कुछ तकलीफ हो तो बता देना, मैं अभी चली जाऊंगी।' यों उसे अपनी मां को बुरा भला कहने का मन हुआ। मगर वह काम पड़ोस की ताई जी ने किया, नरसम्मा ताई ने।

'अरी चुप रह भडुवी! दामाद गांव में है और तू है कि अपनी बेटी से काम-काज करा रही है। तुझे अपनी जुबान का गुमान है कि उसे कैंची की तरह चला सकती है। तू कभी अपनी बेटी की तकलीफ का ख्याल ही नहीं करती, उसके मन की व्यथा को दूर करने की कोशिश नहीं करती। घास बटोरने के लिए भेजती है और ऊपर से उस पर आग बबूला हो रही है।' उन्होंने खूब सुनाया।

अगर एर्रेम्मा किसी के आगे झुकती है तो वह है नरसम्मा। हर मायने में वह एर्रेम्मा से कुछ बड़ी ही है।

'मैंने तो कुछ नहीं कहा उसे। घास कुछ कम दिखी तो सोचा, तबीयत शायद कुछ खराब हो। इसीलिए मैंने पूछा--घास इतनी थोड़ी-सी क्यों है? क्या बताऊं? मैं जरा तेज बोलती हूं। ऐसी कोई बुरी बात तो मैंने नहीं कही।' यों कहती हुई वह अंदर चली गयी।

नरसम्मा ने सन्नी को बुलाया। पास आने पर धीमी-सी आवाज में पूछा, 'सुना है, तुम्हारा मर्द उधर आया था। वह दीखा कि नहीं?'

आदमी के पहले आदमी के समाचार बस्ती में फैल जाते हैं, यह कोई नयी बात नहीं थी। इसलिए सन्नेम्मा को आश्चर्य नहीं हुआ।

'थोड़ी देर बाद आकर बताऊंगी।' यों कहकर वह अंदर चली गयी।

सन्नेम्मा नहीं गयी। बहुत देर बाद रात को नरसम्मा खुद सन्नी के यहां चली आयी।

उस दिन रात को रोज की तरह सन्नेम्मा रसोई में नहीं गयी। पंसारी के यहां भी उसकी मां हो आयी थी। शाम ढलने के बाद वह टाट बिछाकर लेट गयी।

चमारों की बस्ती--जो बाद की बनी थी--उसमें वह घर उत्तर की दिशा में था। दो पंक्तियों में तीन-तीन घर के हिसाब से वह गली नयी बनी थी। नयी गली और बस्ती के बीच में उपजाऊ काली मिट्टी की कुछ जमीन थी, जिस पर धान और साग-सब्जी की क्यारियां थीं।

गली से एक हाथ की ऊंचाई पर बने उस घर की ओलती के नीचे एर्रेम्मा रसोई बना रही थी। एक छोटी-सी दीवार चूल्हे की आड़ के लिए खड़ी कर दी गयी थी।

सन्नेम्मा जहां लेटी हुई थी, उस छोटे-से कमरे का एक दरवाजा बाहर की तरफ खुला हुआ था, पिछवाड़े की तरफ दूसरा कोई दरवाजा नहीं। रात को सन्नी और उसकी छह बहनें उसी में सोया करती थीं। एर्रेम्मा रसोई के पास ही थोड़ी-सी जगह बनाकर सोती। घर के ओसारे में दमा के रोगी की चारपाई समा जाती। उसका पति रात भर खांसता रहता और एर्रेम्मा कोसती रहती और दिलासा भी देती रहती। जैसे-तैसे सुबह होती रहती। दिन चलते रहते।

एर्रेम्मा ने रसोई बनाकर बच्चियों और पति को खिलाया-पिलाया। सन्नी को भी खाने को बुलाया तो जवाब मिला--भूख नहीं है। फिर बर्तन-भांड़े, हांडियां आदि छींके में सहेजकर दरवाजा भेड़कर चली गयी। थोड़ी देर बाद नरसम्मा आयी।

'मेरी बात सुन। चल मेरे यहां।' सन्नी को उठाते हुए बोली। सन्नी का पिता और उसकी बहनें यह सब देख रही थीं। वह मजबूर हो गयी।

जब नरसम्मा सन्नी को अपने घर ले जा रही थी तो एर्रेम्मा उसके घर के अंदर से बाहर आ गयी। अंदर नरसम्मा के दो बच्चे के अलावा कोई भी नहीं थे।

नरसम्मा ने चौका-बर्तन ठीक किया और बाहर आले में रखी दिया लाकर घर में रख दिया। सन्नी की बगल में बैठते हुए बोली, 'देख बेटी! तू मुझे अपनी मां के बराबर समझना। मेरी बात गौर से सुन। घर-गृहस्थी ठीक चले--लड़की के लिए इससे बढ़कर और क्या चाहिए। मैं तो यही कहती हूं कि जो भी तेरा मर्द कहे, उसके मुताबिक चलना।'

सन्नेम्मा को जब यह महसूस हुआ कि उसका मामला बस्ती में चर्चा का विषय बन गया है तो उसे बहुत दुख हुआ। वह रोने लगी।

उसका रोना सुनकर एर्रेम्मा बाहर आ गयी। अंदर जाने का साहस वह कर नहीं सकी।

'अब रोती क्यों है? ऐसी कोई आफत तेरे ऊपर कुछ नहीं आयी। चुप रह।' नरसम्मा समझाने लगी।

'गली-कूचे में हर कोई मेरी ही बात कर रहा है। देख तो सही, वह कितना नीचे उतर आया था। मुझे उसने उस छिनाली के यहां आने को कहा, जहां ऐरे-गैरे लोग आते-जाते रहते।' सन्नी बड़ी व्यथा से बोली।

'मैं मानती हूं कि उसने यह अच्छा नहीं किया। इसीलिए तुझे सतर्क रहना चाहिए। वह जैसा कहे, मान जा। और यह भी देखना तेरा फर्ज है कि वह गलत रास्ते पर कदम न रखने पाये। इसीलिए मैं कह रही थी कि जैसा वह कहे, वैसा कर।'

सन्नेम्मा को इन बातों से और भी दुख हुआ।

'क्यों? वह यहां नहीं आ सकता था?' अपने अंदर से उमड़कर आने वाले दुख को रोकते हुए उसने पूछा।

'कैसे आ सकता था? क्या तेरे यहां घर का कुछ तौर तरीका है? वह घर नहीं, वह एक सूअरबाड़ा है। उसे भूल जा।' नरसम्मा ने समझाया।

भले ही नरसम्मा की बातों में कुछ कटुता थी, मगर बात सच थी। उसकी बहनों के शरीर पर ढंग के कपड़े नहीं रहते, ओढ़ने-बिछाने के नाम पर मैली-कुचैली साड़ियों के चीथड़े से काम चला रहे हैं। सब के सब उसी एक कमरे में उठते-बैठते हैं, सोते-जागते हैं। यही वजह थी कि पैडव्या दिन में भले ही ससुराल में रहता था, रात को सन्नी को साथ लेकर अपने घर जाया करता था।

'मैंने सोचा, तुम दोनों को यहां बुलाऊं। मगर तेरी सास को यह बात पसंद नहीं होगी। पहले से मुझ पर एक तोहमत थी। इसलिए मैं चुप रह गयी। मैं नहीं चाहती कि हम दोनों में झगड़ा हो।'

सन्नी को कुछ नहीं सूझा तो वह घुटनों पर सिर धरे बैठी रही। सोचती रही।

थोड़ी देर बाद नरसम्मा ने कहा, 'बेकार की बातें सोचकर दिमाग खराब मत करो। बस, पैडय्या जो कहे, उसे मान जा। चूल्हे पर गरम पानी रखा है। नहा ले। जूड़ा भी ठीक किये देती हूं। मैंने अपने कन्नी से कह रखा है कि अगर वह वहां पहुंच जाये तो खबर दे देना। तू उसके आने के पहले तैयार हो जा। जब वह वहां आ जाय तो कन्नी के साथ तुझे भेज दूंगी। वापसी में पैडय्या साथ रहेगा ही।'

सन्नेम्मा को उसकी बातें पहले तो ठीक ही जंचीं। मगर जब उसके मन में यह विचार आया कि अगर यह बात खुल जाय तो कितना बड़ा अनर्थ हो जायेगा। दुख के मारे उसकी देह कांप कांप गयी।

हठात् वह बोल पड़ी--'न ताई, न। मैं वहां नहीं जा सकती। नहीं जा सकती।' अपना सिर आड़े हिलाती रही और बिफर बिफरकर रोने लगी।

कई प्रकार से नरसम्मा ने उसे समझाया-बुझाया। मगर उसने एक न सुनी। नरसम्मा चुप रह गयी।

'तो तुम अपनी गिरस्ती की झोली में जानबूझकर अंगारे भरना चाहती है क्या?' नरसम्मा कुछ गरम होते हुए बोली। सन्नेम्मा अपने घुटनों पर माथा टिकाये बैठी थी।

'अपने दिल की बात मुझे साफ-साफ बता दे। संकोच न कर। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों वह तेरे पांवों के पास आयेगा ही। ऐसा तुम भी समझती होगी। अगर ऐसी बात है तो तेरी सास तुझे जो कुछ कहे, उसे मान जा। समझी?' इतना कहकर नरसम्मा ने एर्रम्मा को आवाज दी।

एर्रम्मा आ गयी।

'बैठ जा' नरसम्मा ने झिड़कते हुए-सा कहा।

'अरी हां, क्या कह रही थी, वह दुक्का वालों की बहू? नरसम्मा ने पूछा।

'वह भी तू ही बता!' अपना मुंह दूसरी तरफ घुमाते हुए कहा।

'अरी हां! सुना है, तेरी सास की दो शर्तें हैं, एक शर्त यह कि जब तक उसकी स्वीकृति न मिले तब तक तू दो-एक साल तक अपने मायके नहीं जायेगी। और दूसरी शर्त है, तेरी मां को उसके यहां जाकर माफी मांगनी होगी। जब तक ये दोनों बातें पूरी न होंगी, तब तक वह जीते जी तुझे अपने यहां आश्रय नहीं देगी। तुझे तो पता ही है कि तेरी सास बात की कितनी पक्की है। न तेरे मर्द में उसकी बात का विरोध करने का साहस है, न तेरे जेठों में। अब बता, तेरा क्या इरादा है? अपनी सास की बात मान जायेगी न? अपना मर्द जो कहे, सो करने के लिए तैयार हो जायेगी न?' नरसम्मा ने पूछा।

'अच्छा! अगर मैं अपने मर्द के कहे अनुसार चलूं तो क्या मेरी सास का मन बदलेगा?' सन्नी ने प्रश्न किया।

'हां, हां, क्यों नहीं! बदलेगा। मियां बीवी राजी तो क्या करेगा काजी?' दुनिया की

कोई ताकत उसे जुदा नहीं कर सकती!'

नरसम्मा की बातें सुनते-सुनते सन्नी का पारा और भी ऊपर चढ़ गया।

'अगर ऐसी बात हो तो मैं जाऊंगी ही नहीं। मुझे अपने मां-बाप और बहनें जितनी प्यारी हैं, उसे भी अपने लोगों के प्रति उतना लाग-लगाव रहेगा, मगर अपनी देह का दांव लगाकर उसको वश में करना मुझे पसंद नहीं।'

सन्नी की बात पूरी भी न हुई कि बीच में ही एर्रेम्मा बोल पड़ी, 'मैं हमेशा यही बात कहती आयी कि उसकी सास की तरफ के जितने भी लोग हैं, वे सब एक हैं। अकेली इसे ही अलग-थलग रखा जाता है। एक ही बात का ढिंढोरा पीटते हैं कि मेरी बेटी मुझसे मिली हुई है और ढेर-सारी चीजें मेरे यहां इकट्ठा करती है। यही एक अफवाह नित्य मेरे विरुद्ध उड़ायी जाती रही थी। बस!... उससे पूछ तो सही... कभी उसने अपनी मजदूरी के पैसे हमें दिये हैं? कभी कोई चीज अपनी बहनों के हाथ में पकड़ायी है? सामने ही तो है, पूछ कर देख!'

'और क्या कहूं, जब देखो तब यह अपने उस बदतमीज मर्द के नाम से पागल हो जाती। उसको खूब पिलाती रही खिलाती रही और तो और शराब की बोतल भी लाकर दिया करती थी... मैंने लाख मनाया, मेरी एक भी न सुनी। आखिर मामला यहां तक आ गया कि मैंने कहा, मैं तेरी सास के यहां नहीं जाऊंगी। उसे भेजने के लिए नहीं कहूंगी। मगर इसने कहा—जाना ही होगा, तुझे...।

मैं गयी थी! फिर क्या हुआ...? मेरी इतनी पिटाई हो गयी कि चार दिन चारपाई पर रही...

आखिर मैं तेरे लिए क्या दे सकी? त्यौहार के अवसर पर साड़ी भी खरीद नहीं सकी। मजदूरी के पैसे में से एक पैसा भी मैं जुटा नहीं पायी...। अब फिर से संदेशा भेजा है—मैं जाकर उसके पांव पड़ूं! जहन्नुम में जाये इसकी घर-गृहस्थी! मेरी बला से! लोग-बाग थूकेंगे मुझ पर! मंजूर है मुझे...। मन कचोटने लगता है। छाती के भीतर सदा टीस उठती है... यह सब मेरे पिछले जन्म का फल है...'

जोर से अपने हाथ से अपना ही माथा पीटते हुए एर्रेम्मा वहां से चली गयी।

*   *   *

जैसे महान व्यक्तियों में महान, अति महान और अत्यंत महान होते हैं, ठीक वैसे ही निर्धन व्यक्तियों में भी निर्धन, अति निर्धन और अत्यंत निर्धन होते हैं। उनमें एर्रेम्मा अति निर्धन थी।

एर्रेम्मा का परिवार एक झोंपड़ी में रहता था। रसोई में चार हांड़ियां थीं, टीन के दो गिलास थे, छेद वाला एक लोटा था, खूब मार खाया हुआ एक बर्तन था, जो गिरवी रखने योग्य भी नहीं था और दो थालियां थीं। इसलिए एर्रेम्मा को अत्यंत निर्धन श्रेणी में नहीं

रखा जा सकता!

इसकी तुलना बंगारम्मा के साथ की जाय तो उसे निर्धन ही कहना होगा। उसके घर में अल्मुनियम के समान के अलावा गिरवी रखने लायक कांसे के तीन बर्तन-भांडे थे, बहुओं द्वारा लायी गयी पीतल की दो तश्तरियां थीं और थी पीतल की एक गागर। बंगारम्मा के जमाने के चार गिलास थे। इसके अलावा कछ अचल संपत्ति भी थी।

ऊंचे चबूतरों वाला एक मकान था, जिसका पिछवाड़े की तरफ दरवाजा था। पिछवाड़े में चारपाई लगाने लायक ओलती थी और उसके आगे पिछवाड़ा भी। सन्नी जब बहू बनकर यहां आयी थी, तब से पिछवाड़े में घेरा बांध दिया गया था। जमीन के नाम पर बंजर भूमि का एक टुकड़ा भी था।

इस वजह से लोग उन्हें अमीर कहते थे।

इस घर में बहू बनकर बंगारम्मा के आने के एक साल बाद बंटवारा हो गया। इनके हिस्से में जो खेत मिला, उससे पांच-छह बोरे का धान होता था और चार-पांच बोरे मूंगफली। खुश्क जमीन थी। इससे परिवार का गुजर-बसर हो जाता था।

बाद में परिवार के सदस्यों की संख्या बढ़ गयी। विश्व युद्ध का जमाना आ गया। कीमतों में वृद्धि और काले बाजार का बोलबाला हो गया। फसलों से आमदनी कम हो गयी। लोगों को कर्ज लेने की नौबत आ गयी। अंत में कर्ज चुकाने के लिए जमीनें बेंची जाने लगीं।

इस प्रकार गरीबों की जमीन बिक गयीं। इतने में सरकार बदल गयी। लोगों ने कहा--'राम राज्य आने वाला है।' कुछ लोगों ने उसका खंडन करते हुए कहा, 'चमारों का राज्य आने वाला है।'

'चमारों के लिए नौकरियां मिलने वाली हैं, चमारों के लिए मकान बनाये जायेंगे, जितनी बंजर जमीनें हैं, सब चमारों को सुपुर्द कर दी जायेंगी; तुम्हारे ही कुल का एक व्यक्ति कानून की पोथियां तैयार कर रहा है।' मालिकों ने कहा।

यह चर्चा तो खूब हुई; मगर बंजरभूमि को जोतने के लिए चर्मकार जहां भी जाता था, वहां नायुडु लोग लट्ठ लेकर खड़े हो जाते थे। आखिर में बड़ी दौड़-धूप के बाद गांव से कोसों दूर पथरीली जमीन के टुकड़े उन्हें मिले जरूर, मगर उन्हें खेती के लायक बनाने के लिए कड़ी मेहनत करनी पड़ी।

महीनों पटवारी के यहां सुबह-शाम जाकर खुशामद करके, 'सेवा' करने के बाद बंगारी के पति को एक तलैये के गर्भ में छोटा-सा टुकड़ा दिया गया। उसी साल उसका देहांत हो गया। लोगों ने कहा कि जमीन में कुछ अपशकुन है। फिर भी बंगारी ने उसे नहीं छोड़ा। उसके सभी बच्चे छोटे-छोटे थे। बड़ा लड़का नारायुडु जवान था। उसकी सहायता से बंगारी उस जमीन की मालकिन बन गयी। इस अवधि में उसे जिंदगी को लेकर कुछ नयी बातें मालूम हो चुकी थीं।

गरीब आदमी कभी भी अमीर नहीं बन सकता। अमीरी एक सपना है। जो चीज हाथ आने वाली न हो, उसके प्राप्त करने के लिए दौड़-धूप करना हाथ में आयी चीज खो देने के बराबर है। इसलिए इसके लिए चार दिन का उपवास भी करना पड़े तो उसके लिए तैयार रहना बेहतर है। इतने मात्र से जान तो चली नहीं जायेगी। मगर हाथ से कोई चीज खिसक गयी तो फिर हाथ में नहीं आयेगी।

इसलिए--

उसने एक निर्णय लिया था, 'जो चीज नहीं है, उसे प्राप्त करने के लिए मैं प्रयत्न कभी नहीं करूंगी। जो कुछ हाथ में है, उसे जी जान से बचाये रखने की कोशिश करूंगी।' इस निर्णय का पालन उसने बखूबी किया।

कुछ चर्मकारों को यह भ्रम हो गया था कि उनका राज्य आने वाला है। यह सोचकर घर के बर्तन-भांड़े बेच-बाच दिये। कर्ज लिया और उस पैसे से बंजर भूमि को खेती के लायक बनाने की कोशिश की। मगर कर्ज चुकाने के लिए आखिर उन्हें जमीन बेचनी पड़ी।

अब उनके यहां दो ही चीजें रह गयीं-- एक मकान, दूसरा शरीर।

चर्मकारों की बस्ती के मकान उच्च वर्ण वाले नहीं खरीदते। नीचे वर्ण वालों के पास खरीदने के लिए पैसे नहीं रहते।

हां, शास्त्र और कानून इस बात को मना नहीं करते कि शरीर को कभी-कभी किराये पर छोड़ा जा सकता है, पर न उसे दान दिया जा सकता है, न बेचा जा सकता है।

यही वजह थी कि उनमें से कई सारे लोग अति गरीबी की हालत में हैं अन्यथा अत्यंत गरीबों की श्रेणी में आ जाते।

चारो लड़के कमाने लायक हो गये। दो लड़कों की शादियां भी हो चुकीं। बंगारम्मा का परिवार अब कुछ ठीक ही चल रहा था। फसल के दिनों में चार पैसे कमा लेते थे। थोड़ा-बहुत धान भी बचा लिया जाता था। फसल आने के बाद बड़ी किफायत से रहते। खेत के लिए कर्ज नहीं लेते थे। जितना हो सके उतना ही खेत पर खर्चते। जितना धान हो जाता, उसी से गुजारा कर लेते।

इधर बंगारी का तीसरा लड़का सयाना हो गया। उसमें एक नया जोश हिलोरें मारने लगा। जीवन के प्रति एक आस्था उसमें समा गयी। दूसरे उसकी शादी भी हो चुकी थी।

उसकी शिकायत थी कि उसकी मां जल्दी से कोई निर्णय नहीं लेती है। बड़ी सुस्त है। ये बातें बंगारी के कानों तक पहुंची। उसने साफ शब्दों में कह दिया, 'तुम लोग चाहे जो सोचो, उससे मेरा कोई सरोकार नहीं, मगर मैं इतना जरूर कहूंगी कि खेत की हदबंदी आदि के कामों के लिए कर्ज लेने के पक्ष में मैं बिलकुल नहीं हूं। तुम लोग मेहनत करो। खेत जोतो। चाहे तुम तालाब से मिट्टी लाकर उसमें डाल दो या खाद खरीद कर अधिक फसल उगाने की कोशिश करो। मुझे खुशी होगी। बस मैं चाहूंगी, मेहनत करो और चार पैसा कमाओ।'

मां की बातें जब पैडय्या को नहीं रुचि, तो वह आवेश में आ गया और उसने शहर जाने की इच्छा प्रकट की। बंगारी ने कहा, 'नेकी और पूछ-पूछ। शौक से जाओ।'

बस, मां की बात सुनते ही पैडय्या ने शहर की राह पकड़ी। घूम घामकर कुछ काम पर लग तो गया, मगर खुश नहीं था। साल गुजर गया। कुछ लाभ नजर नहीं आया। दो साल देखते-देखते बीत गये। कुछ हाथ नहीं आया।

इधर गांव में पैडय्या के शहर चले जाने के बाद बड़ी बहू चल बसी। तीन साल तक फसलें ठीक नहीं रही। गांव वालों की हालत बड़ी चिंताजनक रही।

अधिक वर्षा होने से नदी-नालों में जैसे बाढ़ आ जाती है, वैसे ही लोगों में भय की भावना खूब उफनने लगी। प्रवाह में पहले घास-फूस डूबा, फिर जोरों की आंधी चली और छोटे पेड़ धराशायी हो गये।

उस हालत में बंगारी बहुत बौरा गयी।

जूठे पत्ते के लिए लोग एक दूसरे से लड़ते क्यों हैं, यह बात शायद पत्तल में खानेवाले की समझ में न आये, मगर साल भर जिसका पेट भूख से झुलसा हो, उनकी समझ में खूब आती है।

रथयात्रा के एक महीने पहले तक कुछ-न-कुछ काम मिल जाता था। रथयात्रा के बाद तीन-चार सप्ताह कुछ भी नहीं मिलता।

त्यौहार के पहले धान की कटाई का काम जोरों पर चलता, उसके बाद छुट्टी ही छुट्टी।

यही वजह थी कि एर्रेम्मा कहती, 'त्यौहार के पहले ले जाऊंगी।' बंगारी कहती–'त्यौहार के बाद ले जाना।'

सन्नी को मिला लिया जाय तो एर्रेम्मा को दो औरतों की मजदूरी मिल जाती। बंगारी के यहां सन्नेम्मा को छोड़कर चार मर्दों और दो औरतों के लिए काम मिल जाता।

मगर तंगी का ख्याल करके बंगारी अपनी बहू को छोड़ने के पक्ष में नहीं थी।

* * *

पैडय्या दूसरे दिन भोगि* स्नान करके ताई के यहां जाने के लिए निकला।

'अब क्यों जा रहे हो? दोपहर को जाता तो अच्छा होता।' उसका भाई नारायुडु बोला।

'खाना मैं वहां नहीं खाऊंगा। यहां चला आऊंगा।' पैडय्या ने कहा। यह शर्त सुनने पर नारायुडु ने हां कहा।

पैडय्या रात को बहुत देर तक नहीं सो पाया था। सुबह भी उसका मन ठीक नहीं रहा। उसको तब तक चैन नहीं आयेगा जब तक वह अपने मन की बात किसी के सामने

---

* संक्रांति के पहले वाले दिन को 'भोगि' कहा जाता है।

कह न दे।

ताई का गांव वहां से डेढ़ किलोमीटर की दूरी पर है। नारियल के घने पेड़ों के बीच में एक मंदिर है। ताई के घर में उसका दोस्त कन्नय्या है।

ताई की बड़ी बेटी पंद्रह साल पहले चल बसी थी। उसका इकलौता बेटा था, कन्नय्या। मां के मरने के बाद वह अपने मामाओं के यहां पला था। बचपन से ही दोनों में बड़ी दोस्ती थी। पैडय्या ने सोचा, कन्नय्या से बात करने से उसका मन हल्का हो जायेगा। पैडय्या को देखकर घर भर के लोगों में खुशी की लहर दौड़ गयी। ताड़ के रेशेवाले आसन पर उसे बिठाया गया। उसे चारो ओर से घेर कर सब लोग बैठ गये। कन्नय्या घर में नहीं था। उसके लिए खबर भिजवा दी गयी।

चबूतरे पर हड्डियों के ढांचे-सी एक अर्ध नग्न बुढ़िया पड़ी हुई थी, अधमरी आंखों से, बेसुध-सी। वह शायद चेत गयी थी।

'कौन? कौन आया?' क्षीण स्वर से पूछा।

पैडय्या की ताई पास जाकर जोर से चिल्लाकर बोली--'मेरी बहन का लड़का है, शहर में रहता है। उसकी सास कुछ समझ नहीं पायी।

फिर से सवाल किया, 'कौन?' उसकी कांच जैसी आंखें खुली की खुली थी।

'मेरी छोटी बहन का बेटा है, तीसरा।' तीन अंगुलियां दिखाते हुए जोर से बोली। तब तक पैडय्या भी उसके समीप चला गया।

'मैं हूं दादी। कन्नय्या का दोस्त हूं--पैडय्या।'

तब जाकर बात उसकी समझ में आयी। एक क्षण के लिए उसकी आंखें चमक उठीं।

'अच्छा।' माथा हिलाते हुए बोली।

'अरे यह तो पहचान गयी इसे।' सब के सब अचंभे में थे। पास-पड़ोस से लोग आ आकर पैडय्या से बातें करने लगे। ताई ने सब को बिठाया। कुशल-क्षेम की बातें समाप्त हो गयी।

'वहां का क्या हाल है?' किसी ने पूछा।

'बस, जैसे यहां है।' पैडय्या ने गला साफ करते हुए कहा।

'सुना है, चावल मिलना मुश्किल है।'

'मिल तो जाता है, मगर ब्लैक में ज्यादा पैसा देना पड़ता है।'

'अरे भाई। यहां भी वही हाल है।' एक वृद्धा ने कहा।

'काम-काज मिल जाता है, वहां?'

'कभी मिलता है, कभी नहीं।'

फिर उसके बाद शहर के बारे में पूछा गया।

'अग्रहारम, वेंकटापुरम और तंगुडुबिल्ली--इन तीनों गावों को मिला दिया जाय तो जितना बड़ा इलाका बनता है, उतना बड़ा है वह नगर।' उसने बताया।

'हमारे गांव से दस मील की दूसरी पर जो टाउन है, वह उस महानगर का एक मुहल्ला जैसा है। उसकी तीन ओर पहाड़ है और चौथी तरफ समुद्र है।'

पैडय्या जब शहर के बारे में बता रहा था तो सारे लोग बड़े गौर से सुनने लगे। मगर एक लड़की वहां उपस्थित सारे लोगों के साथ पैडय्या को भी एक बार देखकर बोली--

'हां हां उस बड़े शहर को रात को ही देखना चाहिए। आकाश में जितने तारे चमकते हैं, उतने बिजली के दीये जलते हैं। उनका खर्च करोड़ों में होता है।' मेरे ससुरजी ने कहा।

वह लड़की पच्चीस वर्ष की होगी--पैडय्या ने सोचा। उसकी तरफ अचानक देखने से ऐसा लगती है मानो सन्नी की बड़ी बहन हो। ताड़ के खंभे से सटकर खड़ी हुई थी। पैडय्या ने उसकी तरफ नजर दौड़ायी।

ताई ने कहा--'रामय्या की बहू है।'

पैडय्या ने अपना मुंह दूसरी तरफ फेर लिया।

'अच्छ.। यह तो बोल बेटा! वहां तू क्या काम करता है?'

'खलासी का।'

'यानी।'

पैडय्या ने बताया—'उस नगर में एक बहुत बड़ा मार्केट है, जहां लाखों-करोड़ों का कारोबार चलता है। कपड़े, शक्कर, दाल-चावल, मिर्च-मसाला आदि अनेक वस्तुओं के होलसेल डीलर वहां रहते हैं। सामान गाड़ियों से उतारने-चढ़ाने का काम होता है। ऐसे काम करने वालों को खलासी कहा जाता है। कुछ लोग सामान का हिसाब-किताब देखते हैं, तो कुछ लोग छोटी दुकानों के लिए माल सप्लाई करते हैं।'

पैडय्या को हिसाब-किताब का काम सौंपा गया क्योंकि ईमानदार व्यक्तियों को हलका काम सौंपा जाता है। हां, कभी-कभार कोई नहीं रहता तो सामान उतारने-चढ़ाने का और बोरे उठाने का काम भी वह कर देता है।

'महीने में कितना मिलता है?'

पैडय्या सीधे जवाब नहीं दे पाया।

'यह सीजन पर निर्भर करता है और फिर अपना-अपना भाग्य भी है। किसी दिन दस मिलता तो कभी-कभी चार-पांच। किसी-किसी दिन वो भी नहीं।' पैडय्या बोला।

लोगों ने उसे फिर भी नहीं छोड़ा।

'महीने में सत्तर अस्सी मिलते होंगे।'

'सीजन में मिलता है।'

'और बाकी दिनों में?'

'पचास से कम नहीं।'

'अच्छा!' सब के सब माथा हिलाते हुए एक दूसरे की तरफ निहारने लगे। पैडय्या ने गौर किया कि रामय्या की बहू की आंखें उसी पर टिकी हुई हैं।

'खाना कहां खाते हो?' ताई ने पूछा

'हम एक ही जगह काम करने वाले आठ आदमी एक औरत के यहां दो रुपया देकर खाते हैं। रोज।'

'वही औरत है न! पुरानी?' रामय्या की बहू ने पूछा।

पैडय्या की समझ में नहीं आया कि वह किस औरत की बात पूछ रही थी। अपनी तरफ आकर्षित करने के लिए कुछ बोली होगी, उसने सोचा।

'तू जानती है उसे क्या?' ताई ने पूछा।

'वह अप्पय्या की पत्नी है। उसे छोड़कर वह किसी के साथ भाग गयी थी।' रामय्या की बहू बोली।

कल-परसों की छोकरी बड़ी सयानी बनकर बात करने लगी तो ताई को गुस्सा आया।

'तू कब की बात बोल रही है री?' ताई ने पूछा।

'दस-पंद्रह साल हो गये होंगे। जब मेरे ससुर जी... तुम्हारे पास आये थे न...? उसने हाल-चाल पूछा तो वह अनजान बन गयी। यह बात उसने सीधे पैडय्या से कही थी। पैडय्या की समझ में कुछ नहीं आया तो वह उसकी तरफ एकटक देखने लगा। उसने मन ही मन सोचा कि इस लड़की की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते सन्नी का भी नाक-नक्शा ऐसा ही जायेगा, गोल-मटोल-सी।

'अरी बावरी। तू अजीब अजीब बातें क्या कर रही है?'

अपने ससुर की बातें दुहरा रही है क्या? छोड़ो उसको। दस साल पहले की औरत को वह क्या पहचानेंगे?' ताई ने उसे टोका।

तब भी पैडय्या कुछ समझा नहीं। ताई ने गांठ खोली, 'अरे बेटे! पिछली बरसात में तुम्हें खोजते हुए पहरुआ रामय्या शहर आया था न, उसकी बहू अब उस काले-काले, बहरे मानुष से सुनी हुई बातें तुम्हारे आगे उगलने लगी है। तुम्हारे यहां दो दिन ठहरा था और तुमने उसे खाना खिलाया था--यहां उसने ढेर सारी बातें कही थीं। यह छोकरी--रामय्या की बहू है और अपने ससुर की पुरानी बातें अब दुहरा रही है।'

तब पैडय्या को बात समझ में आयी।

उस रात को मजदूरी लेकर बाहर जा रहा था कि किसी ने कहा, अरे भइया! यह लो, तुम्हारा रिश्तेदार आया है।' उसकी तरफ गौर से देखा, मगर कुछ याद नहीं आया कि आखिर यह मेहमान है कौन!

'आप किनको खोज रहे हैं?' पैडय्या ने पूछा।

उसने अपने को उसकी ताई का रिश्तेदार बताया। वह किसी काम पर कहीं गया हुआ था। ताई के कहने पर वहां उतरकर उससे मिलने आया है।

चूंकि वह ताई के कहने पर आया था इसलिए उसकी खूब आवभगत की। होटल में खाना खिलाया। फिल्म भी दिखायी।

बांस की तरह लंबा और पतला-सा था। अधिक उम्र होने के कारण कमर कुछ झुकी हुई थी। धोती और मैला-सा सफेद कुर्ता पहने हुए था। सिर पर पगड़ी थी। हाथ में लट्ठा। उसके सामने वह बौना लग रहा था।

थियेटर में रामय्या की आंखें चौंधिया गयीं। उसे सम्भालने में कुछ वक्त लगा। पैडय्या को बड़ी परेशानी हुई।

जब तक वह बूढ़ा थियेटर में था, फिल्म के बारे में तरह-तरह के सवालों से उसकी नाक में दम कर दिया। अगल-बगल में बैठे लोगों को कुछ परेशानी हो रही थी। इंटरवल के बाद जब वह बैठे-बैठे सो गया, पैडय्या को कुछ तसल्ली हो गयी।

थियेटर छोड़ने के बाद भी उसके प्रश्नों का तांता लगा ही रहा। पैडय्या एक-एक प्रश्न का जवाब देता गया।

सब्जी मंडी में एक चबूतरा ही पैडय्या का शयन-कक्ष था। वहां बिजली भी नहीं थी।

मार्केट में पैर रखते ही रामय्या के पैर के नीचे एक बड़ा-सा चूहा आ गया। उसके बाद एक सड़ा हुआ बैगन, ककड़ी वगैरह पैरों के नीचे आते रहे। वह हर बार उछलकर आगे बढ़ता गया।

पैडय्या ने बोरे और चटाई के फटे-पुराने टुकड़े आदि इकट्ठा करके उसके लिए बिस्तर का इंतजाम कर दिया।

मगर वह बूढ़ा नहीं सोया। बराबर पूछता रहा, 'इस नगर में इतनी रोशनी क्यों है? और यहां इतना अंधेरा क्यों है? यह जगह इतनी गंदी क्यों है?' ऐसे ही कई सवाल। मच्छरों, खटमलों चींटियों आदि को मसलते हुए इधर-उधर भागने वाले चूहों को देखते हुए वह देर तक सो नहीं पाया।

पैडय्या ने सोचा था कि घबड़ाकर वह यहां से नौ-दो ग्यारह हो जायेगा। नहीं। उसने नगर दिखाने का प्रस्ताव किया।

लाचार होकर साथियों के द्वारा मालिक को खबर भिजवा दी। खाना बनाने वाली औरत से कह दिया कि मेरे साथ एक आदमी और खाने आयेगा।

नगर की बड़ी-बड़ी इमारतें, अस्पताल, बड़े-बड़े कार्यालय भवन, विशाल सड़कें आदि दिखा दीं। उसके सभी सवालों का वह जवाब देता रहा। एक बजे रामय्या ने कहा--'चलो भाई, चलें। पेट में चूहे कूद रहे हैं।'

पैडय्या ने कहा--'मेरा कोई घर नहीं है।'

'फिर तुम अपना सामान कहां रखते हो?' रामय्या ने सवाल किया।

'दुकान के एक कोने में रख लेता हूं।'

'खाना कहां खाते हो?'

उसने बताया कि वह खाना कहां खाता है।

'तो मुझे वहीं ले चलो।' रामय्या ने कहा।

मार्केट से चार-पांच गलियों के बाद एक गंदी बस्ती है। बड़े-बड़े महानगरों में ऐसी बस्तियों की उपस्थिति तो आम बात है। नगर के बीचोंबीच रहने से यह बस्ती भी आकार में कुछ छोटी थी। छोटी होने की वजह से घर एक दूसरे से बहुत सटे हुए थे और ये झुग्गियां एक गंदे नाले की दोनों तरफ बनी हुई थीं। रास्ते साफ नहीं रहते थे भीड़ बहुत रहती थी। मगर इस गंदी बस्ती की दोनों ओर बड़ी-बड़ी इमारतें थीं। वहां बहुत बड़ा थियेटर भी था। कई सारे होटल मौजूद थे। वहां ट्रैफिक घनी रहती थी। क्योंकि वहीं से ग्रैंड ट्रंक रोड गुजरती थी।

उस बस्ती में कदम रखते ही रामय्या ने पूछा, 'तुम यहीं रहते हो?' वहां टट्टियों में मिट्टी पोतकर दीवारों के रूप में खड़ी की गयी झोपड़ियां थीं। गांवों में सूअर बाड़े भी इनसे बेहतर होंगी। लकड़ी के तख्तों से बनी चौखटों पर टिन के दरवाजे लगे थे। चटाई के टुकड़ों, ताड़ और खजूर के पत्तों, टूटे-फूटे डिब्बों से छत बनी हुई थी। इसी को वहां के लोग 'घर' कहते थे।

जहां सिर्फ एक खाट डालने की जगह थी, उस झोपड़ी का किराया दस रुपया था। यह बात सुनकर रामय्या का मुंह खुला का खुला रह गया। एक सेंध जैसे दरवाजे के अंदर वह घुस नहीं पाया। बाहर ही बैठकर जो कुछ परोसा गया, खा लिया। सड़क के नल के पास जाकर हाथ धो लिये। 'यह भी कोई खाना है। घास-पत्ते खाना इससे बेहतर है।' रामय्या ने हाथ पोंछते हुए कहा।

तब जाकर पैडय्या को मालूम हुआ कि वह कैसी बदतर जिंदगी जी रहा था। उस महानगर की आबादी का पांचवां हिस्सा ऐसे ही घरों में जिंदगी गुजार रहा है। जब चार पैसे जेब में जमा हो जाते हैं तो उसे यह बात याद नहीं रहती। जेब जब खाली रहती तो पैडय्या को ये बातें याद हो आतीं।

'मैं तो यह पूछ रही थी कि खाना खिलाने वाली औरत वही है या कोई दूसरी है। उसकी जाति-पाति मैं नहीं पूछ रही थी।' लड़की ने अपनी सफाई दे दी।

तूने कुछ भी कहा हो, मगर मेरे ससुर ने तो उसके हाथ का खाना खाया था। अगर इससे वह भ्रष्ट हो गया तो मेरा लड़का भी भ्रष्ट हो गया समझो। अगर उसका कुछ नहीं बिगड़ा तो मेरे बेटे का भी कुछ नहीं बिगड़ा।'

उसकी ताई की यह बात सुनकर सब के सब हंस पड़े।

थोड़ी देर तक कोई कुछ नहीं बोला।

पैडय्या की भाभियों में से एक ने मौन तोड़ते हुए कहा--'अरी! मुझसे क्या पूछ रही है। आपने काका से पूछ ले।'

गठरी-सी बैठी हुई पंद्रह साल की लड़की यह बात सुनते ही सहम गयी और मुंह फुलाये रही।

'काका' शब्द से पैडय्या समझ गया कि वह कन्नय्या की पत्नी थी। पैडय्या के पूछने

पर भाभी ने बात खोल दी।

इस पर ताई ने कहा--

'हां, इसका मर्द गांव की चाकरी में ऊब गया है। तुम्हारे पास शहर में आकर यह भी अपने लिए कोई काम ढूंढना चाहता है। हां रामय्या की बातों से पहले तो वह मुंह मोड़ चुका था। अब यह लड़की शहर की रट लगाने लगी है। पता नहीं यह कब वहां उड़ जाये। अपनी राय तो बता दे।'

'चाहने भर से बात बन जायेगी क्या?' छोकरी की मौसी ने कहा।

'वह अकेली थोड़े ही जायेगी!' किसी दूसरे की आवाज थी।

'आजकल की लड़कियों को शहर के नाम से बड़ा मोह हो गया है। उसे स्वर्ग मानने लगी हैं। अब इनकी एक टोली बन गयी है, यहां भी।' रामय्या यह बात अपनी बहू को देखकर बोल गया था।

रामय्या की बहू ने कहा :

'हां हां! शहर जाने में बुरा क्या है?'

ताई ने कुछ नहीं कहा। इससे उसे और बल मिला।

वह फिर बोली--

'यहां तकलीफ झेलने के बजाय वहां जाने में नुकसान क्या है?' इसका जवाब किसी ने नहीं दिया। ताई ने कहा--

'नुकसान की बात कौन कहता है? जाना चाहो तो जा सकते हो। मगर वहां रखा क्या है? कूड़ा-करकट और गंदी नालियों के किनारे बनी मुर्गियों के दड़बे जैसी झोपड़पट्टियों में भिनकते मच्छरों और मक्खियों के बीच जिंदगी बसर करो वहां जाकर! तुम्हें रोकता कौन है?'

'और यहां कौन से शाही महलों में दिन गुजार रहे हैं? यहां भूखा मरने की बजाय उन्हीं गंदी बस्तियों में रहना बेहतर है।' वह छोकरी बोली।

'न यहां सुख है, न वहां। ऐसे में वहां जाकर क्यों मरें? यहीं मर जायें तो अच्छा है।' किसी दूसरी ने कहा।

'वहां भोजन तो मिल जाता है। यहां क्या खाक मिलेगा।' एक सयानी लड़की बोली।

इस पर वहां बैठी औरतों में खूब बहस हुई। उनकी बातचीत में वही घिसी-पिटी बातें दुहरायी गयीं। ताई के लड़के को केंद्र बनाकर बहुत कुछ कहा गया।

'अपने बेटे की हालत पर जरा गौर करो तो सही! आठ साल से वेंकटायुडु के यहां नौकर है। पहले के चार साल ठीक चले। उसके बाद न पैसा दिया, न अनाज। 'आज' 'कल' करते हुए कितना समय गुजर गया? दो साल। कहते रहे, फसलें खराब हो गयीं। अनाज का एक दाना भी नहीं मिला। बार-बार पूछे तो मारने को आ जाते। इसलिए डर के मारे भूखा-प्यासा रहना पड़ रहा है। अगर हम कहें--'ऐसी हालत में नौकरी क्यों कर

रहा है?' तो जवाब में तुम्हारा लाड़ला बेटा कहता है, 'जब फसलें अच्छी हो जायेंगी तो कम से कम धान तो मिल जायेगा। नहीं तो वह भी हाथ से निकल जायेगा। मगर वह यह कभी नहीं सोचता कि और कहीं जाकर मेहनत मजदूरी कर ले तो दो-चार पैसे मिल जायेंगे, जिससे पेट तो भर जायेगा।' रामय्या की बहू बोली।

'मगर काम मिलना भी तो मुश्किल है!' ताई ने कहा।

'मुश्किल तो होगा ही। इसीलिए तो मैं कह रही थी कि शहर की राह पकड़ो। यहां तो एक तरफ मुफ्त की चाकरी है, दूसरी तरफ जोर-जबर्दस्ती। लात-मार और गाली-गलौज के हम आदी हो चुके हैं। गिरे हुए को हर कोई लात मारता है। उसके झुलसे पेट की तरफ कोई नहीं देखता। पहले से ही हम पददलित थे और अब दब्बू भी बन गये हैं। इसलिए तो उनका दबदबा बेरोकटोक चल रहा है।' इतना बोलकर रामय्या की बहू चुप हो गयी।

'अकेले तेरा एक पेट भरने से हालत सुधर जायेगी क्या?' ताई ने प्रश्न किया।

'नहीं। सब की सुधर जायेगी, अगर हर कोई अपने भटके हुए भाग्य को ठीक रास्ते पर लगा दे।'

'इस तरह गांव के सब लोग गांव छोड़कर शहर चले जायेंगे तो वहां क्या सब के लिए काम-धाम मिल जायेगा? इधर पोतय्या और उसके भाई अपने घर-द्वार बेचकर शहर चले गये और छह मास भी न बीते होंगे कि वापिस गांव पहुंचना पड़ा।' ताई ने कहा।

'जो भागकर चले आये, उनकी बात क्यों कहती हो? उनकी कहो, जो वहां बस गये हैं।'

'आज नहीं तो कल वे भी वहां से भाग निकलेंगे!'

'ठीक है', हम भी लौटकर आयेंगे। मगर तब तक तो हम वहीं रहना चाहते हैं।

'तो और लोगों की बात तू नहीं सोचेगी?'

रामय्या की बहू को कोई जवाब फौरन नहीं सूझा। थोड़ी देर बाद वह बोली, 'हां मैं नहीं सोचती। मगर तू तो बड़ी सोच-समझवाली है न! तू ही बता, बाकी लोगों का क्या होगा?'

ताई क्या बोलती? उससे कुछ कहते न बना। भगवान ने उसकी गुहार सुन ली। कन्नय्या भगवान कन्हैया बनकर प्रत्यक्ष हुआ।

आते ही बगैर कुछ कहे-सुने गमछा सिर पर बांधकर पैडय्या को घूंसे मारने लगा। फिर बोला--

'उठ रे उठ!'

पैडय्या तिपाई पर से उठ गया।

कन्नय्या उस पर बैठते हुए बोला--'क्यों रे! बुद्धू का बच्चा! क्या तुझे इतना भी नहीं मालूम कि मैं जहां भी होऊं वहां तुझे आना चाहिए? ठीक है, मेरे पैरों के पास आके बैठ?'

जब पैडय्या ने ऐसा नहीं किया तो वह उसे मारने लगा। वहां उपस्थित औरतों ने कन्नय्या को अलग कर दिया। ताई एक लकड़ी लेकर झूठमूठ दोनों को मारने लगी।

* * *

ताई के बहुत आग्रह करने पर पैडय्या ने वहीं खाना खाया। घर न जाकर सीधे तालाब के किनारे जाकर बैठ गया।

सांझ उतर रही थी। धूप का प्यारा, नन्हा-सा वह छौना कूदकर कब का नौ-दो ग्यारह हो चुका था। ठंडी हवा बहने लगी थी। किंतु सन्नी के आने के आसार कम हो चले थे।

'थोड़ी देर और ठहरूंगा। तब तक, जब तक गांव से जाने वाले लोग ताड़ वन से ओझल न हो जायें।'

पैडय्या सन्नी के इंतजार में वहां बैठा तो था, किंतु उसके मन में रामय्या की बहू का चेहरा मंडराने लगा था।

रामय्या की बहू!... वाह! भरी जवानी... नाक-नक्शा... बात करने का तौर- तरीका ... वह कुछ मोहित-सा हो गया...। फिर थोड़ा-सा डरा भी।

जब तक वह बात करती रही, उसकी आंखें पैडय्या पर टिकी हुई थीं। ताई के साथ बहस करते हुए वह उसी की तरफदारी करती रही। उसकी आंखों की रोशनी, उसका भरा-पूरा मुखड़ा, उसकी गजब की आवाज, उस आवाज में गूंजने वाला अपनापन... यह सब कुछ उसका पीछा नहीं छोड़ रहा था।

'भोली-भाली है। बात करने के रंग-ढंग से उसके बारे में कुछ शक जरूर हो जाता है।' कन्नय्या ने कहा था। पैडय्या की भी यही राय थी। किंतु यकीन नहीं हो रहा था।

'जा रहे हो क्या?' उसने पूछा, पैडय्या को उठते हुए देखकर!

'खाने के लिए अपने यहां बुलाया ही नहीं तूने!' कन्नय्या ने ताना मारा।

'मैं क्यों बुलाऊं? पता नहीं तुमलोगों के यहां खाने में क्या-क्या बना हो!' रामय्या की बहू ने कहा। बाहर आने पर पैडय्या ने उसके बारे में पूछा।

कन्नय्या ने बताया–'रामय्या की बहू को शहर में घर-गिरस्ती बसाने की बड़ी तमन्ना थी। उसका पति मोटा-तगड़ा जरूर है, किंतु है बहुत सज्जन।

इसलिए उसने कन्नय्या से बार-बार कहना शुरू किया। कन्नय्या; वैसा ही करेंगे, वैसा ही करेंगे—कहते हुए समय बिताता गया।

जब भी मौका मिलता वह यही बात छेड़ती। दिन-ब-दिन उसका आग्रह बढ़ता गया।

अंत में कन्नय्या ने उसका असली उद्देश्य जानना चाहा।

एक दो बार उसे पीटने की भी कोशिश की, लेकिन वह बच गई। पर एक दिन वह उसे अकेली मिली।

'अब जाओगी कहां'–कन्नय्या ने कहा।

उसने कहा—'कहीं नहीं जाऊंगी। मगर एक बात सोच ले, जिसके घर में खाने-पीने को अनाज हो, उसे चोरी नहीं करनी चाहिए। जिसके घर में ब्याही हुई बीवी हो, उसे ऐसा नहीं करना चाहिए। यदि तुम्हारे घर बीवी न हो तो बोलो। उस बीवी से यदि तुम किसी तरह असंतुष्ट हो तो मैं राजी हूं। जान बूझकर अपना पारिवारिक जीवन बर्बाद मत करो। जिस तरह सारे मर्द एक तरह के होते हैं उसी तरह सारी औरतें भी एक ही तरह की होती हैं'।

वह सिर झुकाये लौट गया...

सन्नेम्मा तो उसके सामने कुछ भी नहीं है और कन्नय्या के सामने वह भी फीका ही दिखेगा।

दूर पर कोई औरत दिखी तो पैडय्या ने गौर से देखा। वह औरत यही कोई पचास-साठ की रही होगी।'शायद अब वह न आये!' यह सोचकर उठने ही वाला था कि मन में आया 'थोड़ी देर और सही।'

...तब तक सन्नेम्मा के साथ ब्याह तो हुआ था, मगर वह मायके से आयी नहीं थी...। गर्मी के दिन थे। पोतय्या के ताड़वन में वह ताड़ के फल की खोज में निकला था... गरम हवा चल रही थी...। नजर गड़ाये चारों तरफ देखा। दूर पर चमार अप्पय्या की बेटी अकेली बैठी थी। बगल की अमराई से आम चोरी करके लायी थी। एक आम खा रही थी और दूसरे हाथ से जो आम तोड़कर लायी थी उन्हें आंचल में बांधने की कोशिश में थी। उसे देखकर वह चकित रह गयी और अपने फटे-पुराने आंचल को छिपाने लगी।

उस दिन बड़ा अनर्थ हो गया था। कई दिन तक उसके सामने मुंह उठाने का साहस नहीं कर पाया। जब भी उस घटना की याद हो आती है, तो वह सिहर उठता है। सोचने लगता है कि इसमें उसका कोई दोष नहीं था। सारी बुराइयों की जड़ आखिर भूख ही तो है।

उस दिन जिन परिस्थितियों से वह गुज़र रहा था, ठीक आज भी वही हैं। उसके मन में तरह-तरह के विचार उठ रहे थे। समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर किया क्या जाय।

'यह तो आयी नहीं। खैर!' सोचते हुए पैडय्या उठ खड़ा हुआ। अपने आप पर उसे बहुत गुस्सा आ रहा था। वास्तव में उसे गुस्सा था अथवा दुख--इसका वह निर्णय नहीं कर पाया। कुछ भी हो उसे कोई मार्ग नहीं सूझा।

कपड़े झाड़कर वह तालाब के किनारे-किनारे चलता रहा। सूरज डूबने को था। जब वह पेरंटालगुडि (भगवती का मंदिर) तक पहुंचा तो गंगम्मा की याद हो आयी। कई मन का जो बोझ उसके मन पर लदा था, वह अकस्मात हल्का हो गया। तालाब के बीच का रास्ता पकड़ा। उस पार जाकर दस कदम चलते ही गंगम्मा की झोंपड़ी सामने चेन्नंगि नारियल बाग में दिखी।

'कहो पैडय्या बाबू! इधर कैसे रास्ता भूल गये आप?' गंगम्मा ने पूछा।

'यूं ही, सोचा मिलता चलूं।' पैडय्या ने जवाब दिया।

गंगम्मा चूल्हे पर खाना बना रही थी।

पैडय्या जाकर उसके सामने एक पत्थर पर बैठ गया। उसके मुंह पर सूरज की मंद किरणें पड़ रही थी। उसका काला-सा मुखड़ा उस हल्की-सी रोशनी में भी कुछ झुलसा हुआ-सा दिखाई दे रहा था।

'क्या बात है? तेरा मुंह कुछ लटका हुआ-सा दिख रहा है।' गंगम्मा ने चूल्हे में जलने वाली लकड़ियों की तरफ देखते हुए पूछा।

'घर से सुबह का निकला हुआ था। इधर उधर बहुत घूमता विचरता रहा। अब ये वक्त हो गया। प्यास लगी तो सोचा, तुम्हारे यहां आकर ठंडा पानी पी लूं।' पैडय्या ने कहा। मगर गंगम्मा इतनी नेक कि उसके मुंह से टपकने वाली प्यास को वैद्य की तरह फौरन ही समझ गयी। वह यह पूछने ही जा रही थी-प्यास और इस सर्दी में?—कि सम्हल गयी।

'कहां-कहां घूम-फिर रहे थे अब तक?' गंगम्मा ने अपना काम जारी रखते हुए पूछा।

पैडय्या ने बताया कि वह कहां-कहां गया था।

इतने में अंदर से बुड्ढ़े की आवाज सुनायी दी, 'कौन आया है? नारायुडु है क्या?'

गंगम्मा का पहला पति पांच-छः साल पहले दूसरी औरत को लेकर कहीं भाग गया था। गंगम्मा दस वर्ष अकेली रही। फिर इस बुड्ढे के साथ रहने लगी। इसकी पत्नी पहले मर चुकी थी। इसके दोनों पैरों में लकवा मार गया था। फिर भी उसी को अपना मानकर रहने लगी थी।

'नारायुडु नहीं, उसका भाई है--पैडय्या।' गंगम्मा ने कुछ ऊंची आवाज में कहा।

पैडय्या अंदर प्रवेश करते हुए बोला, 'मालिक! मेरे पास तंबाकू नहीं, बीड़ी है! चलेगा?'

झोंपड़ी में एक खटिया थी और खटिया के पास पानी का एक घड़ा रखा हुआ था। इससे अधिक वहां कोई सामान नहीं था। वहां सामान रखने की जगह भी नहीं थी। पैडय्या की नजर बुड्ढे की खटिया के नीचे रखी उस अधटूटी हंड़िया पर नहीं पड़ी, जिसमें रेत भरी थी।

'बड़ी मेहरबानी है। जो भी दोगे, चलेगा।' बुड्ढे ने फीकी आवाज में कहा। उसके पिचके हुए गाल और चमकती तेज आंखें पैडय्या देख नहीं सका। एक बीड़ी सुलगाकर दी और दूसरी उसके दूसरे हाथ में थमा दी। फिर वह बाहर चला आया।

गंगम्मा ने हंड़िया में कलछी चलाते हुए शहर की जिंदगी के बारे में पूछा। उसकी मां और सास के बीच के झगड़े के बारे में पूछा। पैडय्या ने सब का जवाब बहुत संक्षेप में दिया। आखिर गंगम्मा ने पूछ ही लिया, 'इधर कैसे आना हुआ?'

'बताया न कि प्यास बुझाने।' पैडय्या बाहर की तरफ देखते हुए बोला।

'अपनी प्यास बुझाने तो तुझे सन्यासय्या की झोंपड़ी की तरफ जाना था। मेरे पास क्या है?'

'जो कुछ है, वही सही।'

'मेरे पास तो बस ये चावल का मांड़ है। अगर मैं इसे तुझे दे दूं तो बुड्ढे को उपवास पर रखना होगा।' वह हंसते हुए बोली। फिर हंड़िया को झोपड़ी में ले गयी। वह लौटकर आयी और चूल्हे की आग बुझाने में लग गयी।

पैडय्या कांपते हुए स्वर में बोलने लगा, 'मैं पिछले छः महीनों से औरत की भूख-प्यास से तड़पता रहा। आज जब घर पहुंचा तो मेरी मां और सास ने आपस में लड़-झगड़कर हम दोनों को अलग-थलग कर दिया। कल रात को मैंने रखुवा के यहां बुलाया। नहीं आयी। मेरी व्यथा वह क्या जाने! तब मुझे इतना गुस्सा आया था कि जाकर एक-एक को टुकड़े टुकड़े कर दूं। मगर मेरी उतनी हिम्मत कहां? उतनी हिम्मत होती तो मेरी यह हालत न होती।'

'... घर की बुरी हालत देखकर मैंने अपने छोटे भाई को शहर आने के लिए कहा। मगर बहुत कहने पर भी वह नहीं माना। मैं अकेले चला गया। अपनी हड्डियां खूब घिसायीं, अपनी बीवी को यहां छोड़कर कई तकलीफों का सामना किया। हर महीने कुछ पैसे भी भेजे। मगर मुझ पर किसी को रत्ती भर भी रहम नहीं कि यह आदमी छः महीने में एक बार शहर छोड़कर गांव क्यों पहुंच जाता है।'

कहते-कहते पैडय्या चुप हो गया। मन में सोचा कि वह अपने मन की सारी बातें उगलने लगा, जो कन्नय्या के सामने प्रकट करना चाहता था।

.. 'अगर मैं चाहता तो शहर में मनमानी कर सकता था। मगर औरत के मामले में अपने को बहुत पाबंद रखता हूं...। खैर, मैं कितना परेशान हूं, भगवान ही जाने...।

पैडय्या इतना कहकर सिर झुकाये बैठा रहा। तब तक अंधेरा फैल चुका था। एक टहनी से जमीन पर लकीरें बनाते हुए वह बैठा रहा।

'वैसे मेरा इरादा इधर आने का नहीं था। मगर पिछली रात मैं जिन घटनाओं से गुजरा हूं, उनसे इतना आपे से बाहर हो गया कि मुझसे बड़ी अनहोनी हो जायेगी। डर है कि मैं कुछ कर न बैठूं। बस! अब तुम जो कहना चाहो, कहो।' वह एकदम चुप हो गया।

'अभी-अभी बुढऊ ने आहट पाकर क्या कहा था, याद है न? अब तुम्हारे भैया के आने का वक्त हो चुका। मैं तुम्हारी भाभी हूं' गंगम्मा ने कहा।

यह बातें सुनते ही पैडय्या बुत बनकर रह गया। गंगम्मा से उसकी स्थिति देखी नहीं गयी। उसने एक मां की तरह बड़े प्रेम से पूछा, 'तू ताड़ी पियेगा न?'

पैडय्या कभी कभार थोड़ी-सी पी लेता था। वह कुछ बोला नहीं। गंगम्मा अंदर जाकर एक शीशी ले आयी और उसके सामने रखते हुए बोली, 'तुम्हारा भैया इसे दो बार पी लेता

है। इसमें से आधा पीकर आधा रख छोड़।' कोई मसालेदार पुड़िया उसके सामने खिसका दी।

उसके बाद वह अंदर जाकर जो मांड़ उसने बनाया था, उसमें से थोड़ा बुड्ढे को दे दिया; थोड़ा उसने स्वयं पी लिया। बर्तन-भांडे बाहर लाकर साफ कर दिये। अपना काम पूरा करके जब वह बाहर आयी तो पैडय्या बातें करने लगा। पौन घंटे के अंदर वह नशे में धुत हो गया। आधी शीशी पी चुकने के बाद बंद करने के लिए कहा तो पैडय्या ने जवाब दिया, 'नहीं। तू मेरी भाभी है। इसका यह मतलब नहीं कि तुम्हारा कहा ही माना जायेगा।'

गंगम्मा चुप हो गयी। हालांकि वह हद से अधिक पी गया फिर भी मन ठिकाने पर ही था।

'अच्छा! अब समझा! भाभी के मरने के बाद सबने फिर शादी करने को कहा तो नहीं माना था...। खैर... चलो... इसमें दोनों की भलाई है; तुम्हारी भी और उसकी भी। मैं तो कहूंगा यह कोई बुरी बात तो है नहीं। इससे आदमी का दुःख-दर्द रफूचक्कर हो जाता है। इधर तू भी सुखी, वह भी सुखी। हम लोगों के भाग्य में तकलीफ ही तकलीफ बदी है, सुख-चैन नहीं। हमारे दिन फिरेंगे, ऐसी उम्मीद मुझे बिलकुल नहीं। आने वाले जन्म में भी नहीं। संसार में सच्चा सुख औरत-मर्द का ही है। हां पीने में भी सुख है, मगर इसमें खर्च है, कुछ नुकसान भी है। उस सुख में तो न कोई खर्च है, न नुकसान ही। भगवान ने यही एक सुख दिया है गरीब को। देखो न, मैं कितना बदनसीब हूं कि मुझे वह सुख भी नसीब नहीं। संकट तो किसी को देखकर नहीं आता। जाने कब किस पर टूट पड़े...'

न जाने वह नशे में अपनी जिंदगी के उतार-चढ़ाव के बारे में क्या-क्या दुहराने लगा। मगर गजब की बात तो यह है कि इतने नशे में भी वह न किसी व्यक्ति को दोषी ठहराता है, न भगवान को।

पैडय्या बहुत बोल बोलकर ठंडा हो गया। गंगम्मा अंदर से पुआल लाकर नीचे बिछाने जा रही थी कि झट से उसे उलटी हो गयी। एक बार नहीं, दो बार। गंगम्मा उसे पुआल पर लिटाने के लिए उसका कंधा पकड़ा तो उसे झटक दिया; फिर धड़ाम से गिर गया। वहां जहां उसने कै कर दी थी।

* * *

संक्रांति के त्यौहार के दिन पूजा-पाठ से निवृत्त होकर सभी अतिथियों को विदा करते-करते दोपहर का वक्त हो चुका था। घर-भर के लोग भोजन करने बैठ गये थे। पहले सब की थालियों में भगवान का प्रसाद परोसा गया।

ठीक उसी समय बाहर से एक जोर की आवाज आई, 'अरी ओ समधिन की बच्ची! तू बाहर निकल'।

'तुम लोग मत उठो। मैं बाहर जाकर देखती हूं। प्रसाद परोसा हुआ है। उपवास में हो। ऐसे में तुम लोगों का उठना ठीक नहीं।' इतना कहकर बंगारी ने हाथ धो लिया और बाहर निकल आयी।

'मां तुम ज्यादा बात मत करो। उससे इतना बोलना, तीज-त्यौहार के दिन लोगों को इकट्ठा करना अच्छी बात नहीं।' नारायुडु ने कहा।

एर्रेम्मा गले पर चंदन लगाये, जूड़े में लाल कनेर का फूल खोंसकर उग्र काली-सी आंगन में खड़ी थी।

ज्यों ही बंगारी दिखी, वह बोली, 'अच्छा! बता रात को तूने अपने बेटे को कहां भेजा था?'

'कहां भेजा था?' बंगारी ने पूछा।

'तू बोल कहां भेजा था?'

'तू ही बोल।'

'नहीं तू ही बोल!'

'अच्छा! मैं ही बोलती हूं! तू मेरी जूती की मार खायेगी न?'

'जरूर! जरूर!!'

'गलती तेरे बेटे से हुई हो या तुझसे--गलती हुई तो है।'

'गलती हो गयी तो देखा जायेगा।'

'रात को तेरा बेटा कहां गया था? दो आदमी उसको अपने कंधे पर डालकर लाये थे न?'

'कौन बेटा? कौन आदमी?'

'तेरे बड़े और छोटे बेटे ने तीसरे को कंधे पर डालकर घर पहुंचाया था या नहीं?' एर्रेम्मा ने सीधा सवाल किया।

'तो क्या हुआ?'

'मैं पूछती हूं कहां से ले आये उसे, बोल!' एर्रेम्मा का वही रोष-आवेश!

'बंगारी चुप हो गयी।'

'बोल! क्यों ले आये?'

बंगारी तब भी चुप थी।

'चलने के लिए तेरे बेटे के पांव बेकार हो गये थे क्या? सुबह का निकला हुआ आदमी देर रात तक कहां-कहां भटक रहा था? उसे ढूंढ़ने के लिए गया हुआ तेरा बड़ा बेटा कब लौटा था? आधी रात को दोनों बेटे छाती पीटते हुए कहां गये थे? दारू पी-पीकर बेहोश पड़े भाई को कंधे पर कब लाये थे? मैं पूछती हूं, इस बात को हमसे छिपाया क्यों?

... तुम्हारा बड़ा बेटा तो अव्वल दर्जे का पियक्कड़ है। तेरा दूसरा भी खूब चढ़ाता है। तू कहा करती थी न कि बड़ा बेटा नेक है; दारू छूता नहीं। आज राज खुल गया न? अच्छा! उसे पीना ही था तो ताड़ी की दुकान में जाकर पीता। गांव से दूर एक झोंपड़ी में रहने वाली उस रखैल, उस चुडैल, बेहया, निगोड़ी, हजार आदमियों को अपना शरीर बेचने वाली उस बाजारू कुतिया के यहां जाकर क्यों पी? और तो और, उसके यहां गया ही क्यों? उसके साथ इसका क्या संबंध है? वह कोई अपनी बिरादरी की है? उसकी उम्र क्या है? इसकी उम्र क्या है? ऐसे वक्त में उसे हमारे घर रहना था, वहां गया ही क्यों? अब इस बात का रहस्य खुल जाना चाहिए कि वह खुद वहां पहुंच गया था या कोई उसे ले गया था?'

एक सांस में एर्रेम्मा हांफते-हांफते बोलती गयी। इस बीच लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गयी।

'अच्छा! खतम हो गया या कुछ और बाकी है?' बंगारी ने पूछा।

'क्या, पूछती है, कुछ और बाकी है?'

'हां! कुछ और बाकी है क्या?'

'बता, वह वहां क्यों गया था?'

'मैंने जाने के लिए नहीं कहा था। उसी से पूछ लेना।'

'पूछ लूंगी, जरूर पूछ लूंगी। उसे बाहर भिजवा दे!'

'वह भोजन कर रहा है।'

'खाने के बाद ही भेज दे।'

'तू अंदर नहीं आयेगी क्या?'

'जब तक तेरा बेटा मेरे घर नहीं आयेगा तब तक मैं तुम्हारे घर में पांव नहीं धरूंगी।

'अच्छा! नहीं धरना। वहीं खड़ी हो जा।' कहती हुई बंगारी अंदर चली गयी।

'अरी ओ पगली एर्री! तीज-त्यौहार के दिन यह क्या हंगामा मचा रखा है तूने?' वहां इकट्ठी भीड़ में से किसी ने आवाज देकर कहा। सबने उसकी ताईद की।

एर्रेम्मा का वही तेवर, वही रौब-दाब! उन पर भी वह गरज रही थी।

बंगारी अंदर जाकर बोली--

'वह झगड़ने के लिए कमर कसकर आयी है।'

पैडय्या ने हाथ धो लिया।

नारायुडु ने मां की तरफ देखते हुए कहा, 'यह जा रहा है।'

'क्यों? क्या हुआ?'

'कहता है, आये दिन के ये झगड़े फसाद उसे पसंद नहीं हैं।'

'तेरी जैसी मर्जी! नाचे न जाने आंगन टेढ़ा, जैसी बात हो गयी।' बंगारी ने कहा।

'मां। तू भी बड़ी अजीब है। वह इन झगड़ों से उब चुका है। ऊपर से तू भी ताना मारने लगी है?' नारायुडु नें कहा।

दूसरा बेटा कोटय्या खा-पीकर बाहर आ गया। एर्रेम्मा ने उसकी तरफ देखा।

तुम्हारा भैया खाना खा चुका या नहीं?' एर्रेम्मा ने उससे प्रश्न किया।

एर्रेम्मा ने सोचा कि वह कहीं बाहर जाने को है। मगर वह तो बिलकुल एर्रेम्मा के सामने आकर खड़ा हो गया।

'तुम यहां से निकल जाओ!' बड़े इत्मिनान से कोटय्या बोला।

एर्रेम्मा ने सोचा यह बात वह किसी दूसरे से कह रहा होगा।

'तुम यहां से घर चले जाना!' कोटय्या ने फिर कहा।

'क्यों जाऊं?' एर्रेम्मा ने उलटा सवाल किया।

'मैं कहता हूं, तू यहां से चली जा!' इतने जोर से बोला कि वहां खड़े हुए लोग एकदम उझक पड़े और एर्रेम्मा के होश-हवास उड़ गये। वह अपने को संभालती हुई बोली, 'नहीं।'

ऐसा कहते ही कोटय्या ने तीन घूंसे दे दिये। वह नीचे गिर गयी। लातों से उसे खूब पीटा।

'अब उठकर सीधे अपने घर चली जा।' कोटय्या ने जोर से डांटते हुए कहा।

'अरे बाप रे बाप! मैं मर गयी!' कहते हुए एर्रेम्मा उठ खड़ी हो गयी।

'चली जा!' जाने का रास्ता दिखाया। वह हांफते, कुछ बड़बड़ाते गिरते अपने को बचाते हुए थोड़ी दूर जाकर खड़ी हो गयी। पीछे की तरफ मुड़ करके फिर से कुछ अनाप-शनाप बोलने लगी।

अबकी बार मोहल्ले के लोगों के साथ गांव के लोग भी तमाशबीन बन गये। उसकी बक-झक सुनकर कोटय्या दो कदम आगे बढ़कर चिल्लाकर बोला--'घर जायेगी कि मैं फिर आऊं?'

एर्रेम्मा गालियां देते हुए चार कदम आगे बढ़ी और रुक गयी। वहां से गालियों की बौछार करने लगी। इस बार उसकी पत्नी, मां और भाइयों को बारी-बारी से जाने क्या-क्या गालियां देने लगी।

कोटय्या अंदर चला गया। अंदर जाकर देखा तो पैडय्या जाने की तैयारी कर रहा था।

'कहां जा रहा है?' कोटय्या ने पूछा। स्वर में कुछ कटुता थी।

पैडय्या ने कोई जवाब नहीं दिया।

'मेरी एक बात सुन। तू अभी अपनी पत्नी के यहां जाना। नहीं तो उसे यहीं ले आना। अब तुझे कहीं जाने की जरूरत नहीं।' गमछे से धूल झाड़कर वह चबूतरे पर बैठ गया। पैडय्या का चेहरा उतरा हुआ था। अंदर ही अंदर वह कुछ खिन्न नजर आ रहा था। उसे किन शब्दों में सांत्वना देनी चाहिए, यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था। उसे डर था कि वह कहीं उसे गलत न समझ बैठे।

'बोल, अगर तुझसे यह काम नहीं होने का, तो मैं जाकर उसे ले आऊं।' वह झट

से उठ खड़ा हुआ।

कोटय्या चुप था। कोटय्या आनन-फानन में वहां से निकल गया। अब की नारायुडु को डर लगा कि मामला कुछ उलझ न जाय।

'अरे छुटवा! ठहर जा! गुस्से का उबाल ठीक नहीं।' कहते हुए दरवाजा तक वह उसके पीछे-पीछे गया। अनसुनी करते हुए कोटय्या आगे बढ़ गया।

एर्रेम्मा को उसकी दोनों बेटियां दोनों तरफ खड़ी होकर उसका कंधा पकड़े हुए थीं और घर की तरफ खींचती जा रही थीं। एक तरफ एर्रेम्मा अब भी कुछ बके जा रही थी और दूसरी तरफ दो कदम आगे बढ़ती तो फिर दो कदम पीछे लौट जाती। दोनों बेटियों की पकड़ से अपने हाथ छुड़ाते हुए हवा में फैलाते हुए गालियां देती रही। कोटय्या तेज कदमों से उसके घर की ही तरफ जा रहा था।

'घर चल मां!' सन्नेम्मा अपना मुंह उसके कान के पास ले जाकर बोली। एर्रेम्मा भी शायद कोटय्या को देख चुकी थी। बेटियों की बात सुनकर घर पहुंच गयी। वहां कदम रखते ही जैसे उसमें नया उफान आ गया।

'वह क्यों गया था वहां? क्या मेरी बेटी बदसूरत थी? उसमें क्या अवगुण थे? किस लिए गया?'' अपनी बंद मुट्ठी को हवा में झुलाते हुए सवाल पूछने लगी।

उसका आक्रोश सही था। मगर कोटय्या के पास यह सब सोचने का वक्त नहीं था। उसकी नजरें सन्नी पर टिकी हुई थीं। वह घबरा गयी। अंदर जाकर दरवाजा बंद करने की कोशिश की, किंतु किवाड़ भिड़ा नहीं पायी।

'घर चल!' कोटय्या गरजते हुए बोला।

सन्नी डरी हुई हिरनी की भांति कांपते हुए बाहर आ गयी।

'चल न!' दूर से ही उसकी आवाज सुनाई दी।

थर-थर कांपने वाली अपनी बेटी को देखकर सन्नी के पिता ने कहा, 'जरा सब्र करो कोटय्या!' वह इतना ही बोलकर हांफने लगा। वह दमा का रोगी था।

'तुमको क्या पता मामा कि अब तक क्या कुछ हो गया।'

कोटय्या ने ओलती के नीचे खड़ी सन्नी को कंधा पकड़कर आगे को धकेल दिया। वह ससुराल चलने को तैयार हो गयी।

एर्रेम्मा के शोर-शराबे से अड़ोस-पड़ोस की औरतें बाहर आकर देखने लगीं। एर्रेम्मा कुछ धैर्य जुटा पायी।

'यह क्या अंधेर है। घर पर धावा बोल दिया। यह भी कोई तरीका है।' कहते हुए एर्रेम्मा बेटी को रोकने के लिए दौड़ी।

'मत जा मेरी बिटिया, तू मत जा।' एर्रेम्मा ने उसे जाने से रोकने की कोशिश की।

कोटय्या ने उन दोनों के बीच आकर उनको अलग कर दिया और सन्नी की कमर में अपना गमछा डालकर खींचते हुए चला गया। एर्रेम्मा ने उसे रोकने की बहुत कोशिश

की। उसको मारा, पीटा, मुंह से काटने को दौड़ी। मुहल्ले के लोगों ने भी उसकी सहायता करने की कोशिश की। कोटय्या सब को परे हटाकर आगे बढ़ गया।

कोटय्या ने गमछे के सहारे सन्नी को घर पहुंचाकर अपनी मां को सौंप दिया। फिर बाहर चला गया।

सास को देखकर सन्नेम्मा एकदम जोर से रो पड़ी। बंगारी ने उसे अपनी छाती से लगाकर पुचकारते हुए कहा, 'अरी पगली रोती क्यों है? बस तू तो अपने घर चली आयी। डरने की कोई बात नहीं।' बंगारी अपनी बहू को अंदर ले गयी।

अपने घर में एर्रेम्मा जमीन पर बैठकर रोने-बिलखने लगी। वहां औरतों ने बड़ा हुजूम लगा दिया। जितने मुंह उतनी बातें। बहस का अहम मुद्दा यह था कि कोई देवर घर में घुसकर अपनी भाभी को घसीटकर ले आये--यह कहां तक वाजिब है?

यदि असिर नायुडु उधर से न गुजरते तो कुछ न कुछ निष्कर्ष जरूर निकलता। 'दुम्मुल पंडुग' (संक्रांति के दूसरे दिन) वे दावत के लिए भेंड़ खरीदने निकले थे। (उस दिन मांस खाने की परिपाटी है) वहां का शोरगुल सुनकर नायुडु ने किसी से पूछा, 'क्या बात है?' किसी ने भी ठीक से कुछ नहीं बताया। तब जाकर पहरुआ पापय्या को बुलाया और पूछा, 'वहां क्या हो रहा था?'

पापय्या ने उसे दो वाक्यों में बता दिया।

'उसे घसीटकर ले जाने वाला उसका पति नहीं था?'

'जी नहीं! उसका देवर था--कोटय्या!'

'जाकर उस साले को बुला लाओ!' नायुडु का चेहरा गुस्से से तमतमा गया।

'अच्छा, मालिक!'

मगर वह जहां खड़ा था, वहीं रहा। न हिला, न डुला।

'वह नहीं आता तो जबर्दस्ती घसीटकर ले आ।' नायुडु का गुस्सा और भी चढ़ गया।

'जी हां!'

फिर भी वह जहां था, वहीं खड़ा रहा। न हिला न डुला।

नायुडु को कुछ संदेह हो गया।

'तो क्या वह पिये हुए है?'

'मालिक! आप देखते रहें। मामला ठंडा पड़ जाने पर एक घंटे के अंदर सब के सब आपके पांवों पर माथा टेकने पहुंच जायेंगे...। हां मालिक! इस बीच हम इसमें दखल देंगे तो वेंकय्यापालेम जा नहीं पायेंगे और न ही भेड़ खरीद पायेंगे।' अच्छा तो यह होगा कि पहले हम अपना काम निपटा लें।'

पापय्या ने जान-बूझकर यह तिकड़म बिठायी थी।

नायुडु को भी बात पसंद आयी।

'ये साले बेहूदे निखट्टू बहुत चढ़े-बढ़े हुए हैं। इनके सिर पर सींग आ गये हैं।' अपने

आप में कुछ बुदबुदाते हुए नायुडु ने पापय्या को साथ लेकर वेंकय्या पालेम की राह पकड़ी।

*　　　*　　　*

'रूखा-सूखा खाकर हम अपने घर में पड़े रहते हैं। ऐसे में हमारे ऊपर किसी का अधिकार क्यों रहे?' यह दलील नारायुडु के दूसरे भाइयों की थी।

ऐसे अधिकार और ऐसी पाबंदी में रहना कहां तक उचित है, यह अलग बात है, किंतु पापय्या बीच में न पड़ता तो पता नहीं यह मामला कहां तक खिंचता। यह बात उन भाइयों को मालूम नहीं थी।

एक घंटे के अंदर पूरा मुहल्ला ठंडा पड़ गया। जैसा कि पापय्या ने कहा था। एर्रेम्मा दो आदमियों के सहारे नायुडु के यहां पहुंच गयी। उसके साथ बस्ती के और दस-पंद्रह लोग भी थे। 'शराबखोर छोकरों का संघ' 'तप्पिटि गुल्लु' लोक नृत्य के घुंघरू आदि सामान से लैस होकर वे चंदा वसूलने गांव में निकल पड़े।

बंगारम्मा अपनी बहू सन्नी को समझा-बुझाकर कह रही थी कि वह नयी साड़ी पहन ले। नारायुडु अपने भाई--कोटय्या को ससुराल जाने का आग्रह कर रहा था, क्योंकि उसे पता चल गया कि नायुडु कोटय्या पर बहुत क्रोधित है। कोटय्या गांव की सरहद तक पहुचा भी न होगा कि नायुडु के यहां से खबर मिली कि तीनों भाई उसके यहां उपस्थित हो जायं।

यह भी पापय्या की ही सलाह थी कि पैडय्या को घर में ही छिपा कर रखा जाय और अकेले नारायुडु नायुडु के यहां उपस्थित हों। जैसे ही वह नायुडु के घर पहुंचा, पापय्या ने उसे बाहर एक कोने में ले जाकर बताया कि जब नायुडु से उसकी बातचीत समाप्त हो जाय, तब वह अंदर प्रवेश करे।

अंधेरा होने को था। ढोर-डंगर घर पहुंच चुके थे। दूसरी तरफ 'तप्पिटि गुल्लु' लोक नृत्य वाले भी आ गये थे। नायुडु का बरामदा लोगों से खचाखच भरा हुआ था।

'तप्पिटि गुल्लु' वालों के जाते ही पापय्या नायुडु के पास जाकर बोला, 'मालिक! नारायुडु अभी शायद आ जायेगा। उसका दूसरा भाई--एर्रेम्मा का दामाद कहीं गया हुआ था, आते ही वह यहां चला आयेगा। यह जो कोटय्या है न, ससुराल चला गया। त्यौहार है न, इसलिए!'

ये सारी बातें उसने बहुत हलके-फुलके ढंग से बतायी थीं।

'वाह वाह! असली व्यक्ति को गांव पार करा दिया। मैंने कहा था न!' नरसम्मा ने बहुत दुखी होकर कहा।

'अरी, तू चुप रह! बीच में तू अपनी टांग क्यों अड़ाती है?' पापय्या ने टोका।

'तुम सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हो।'

ठीक उसी वक्त नारायुडु बड़े अदब से आकर बोला, 'बाबू जी! आपके चरणों में प्रणाम।' उसने झुककर नायुडु के पांव छुए।

नायुडु का पारा नहीं उतरा था।

'अबे! हरामजादे! औरत के साथ ऐसा सलूक किया जाता है? कुछ लाज-शरम भी है तुम्हें? उसके घर पर जाकर ऐसा बेहूदा सलूक करते हो? उसे क्यों मारा? क्या समझा है इसे, गांव है या जंगल?'

नारायुडु कुछ कहने ही जा रहा था कि उसे रोककर बीच में ही नायुडु बोला–'यह सब मैं नहीं जानता! उसने जो मार खायी, उसका सबूत तो साफ दीखता है।'

नारायुडु ने कहना चाहा कि 'उस मामले से मेरा कोई सरोकार नहीं है।'

'उस औरत को मारा है न?' कुर्सी से उठते हुए और अपना पूरा क्रोध उस पर उड़ेलते हुए नायुडु ने पूछा।

नारायुडु की समझ में नहीं आया कि क्या जवाब दे।

'अरे भैया! रहने दे अपनी कैफियत...। बाबूजी ने सब कुछ अपनी आंखों से देख लिया है। समझे...?'

नारायुडु पापय्या का इशारा समझ गया। वह चुप हो गया। कुछ बोलने की कोशिश नहीं की।

'मैंने देखा है, तुम्हारा भाई उसे जानवर की तरह खींचते हुए ले जा रहा था। उस वक्त मेरे हाथ में लाठी होती तो उसकी हड्डी पसली टिका देता। अब भी मैं उसे नहीं छोड़ूंगा!' यह कहते हुए नायुडु फिर जाकर कुर्सी में बैठ गया।

जब नायुडु थोड़ा ठंडा पड़ा तो नारायुडु ने कहा, 'जी बाबूजी! उसने यह काम ठीक नहीं किया। मुझे बहुत दुख है बाबूजी! गलती हो गयी। माफ कर दीजिये।'

...'वह खुद हमारे घर पर आकर झगड़ने लगी। एक तो घर भर के लोग उपवास पर थे; फिर पूजा-पाठ के बाद ज्यों ही लोग भोजन करने लगे कि वह चिल्ला-चिल्लाकर न जाने क्या-क्या बकने लगी। मेरी मां ने जवाब में कुछ नहीं कहा, वह अंदर आ गयी। मेरा छोटा भाई अपने को रोक नहीं सका। यह कोई आज की बात नहीं है, उसकी रोज रोज की दिन-चर्या है। महीने भर से आ-आकर कुछ न कुछ बकती रहती है और भीड़ इकट्ठा कर लेती है। बहुत समझाया-बुझाया हमने, मगर कभी हमारी एक न सुनी।' नारायुडु उस पर आरोप लगाते हुए कहा।

एर्रम्मा कुछ बोलने को हुई तो नायुडु ने उसको रोका और कहा, 'अरे भले आदमी! वह रोज आकर हंगामा करने लगी तो मुझसे उसकी शिकायत करनी चाहिए थी।'

'जी बाबूजी! गलती हो गयी।' नारायुडु ने अपनी गलती मान ली। गलती मानने वालों को कोई कुछ नहीं कहता। नायुडु एकदम ठंडे पड़ गये।

उसके बाद नायुडु की पत्नी, पड़ोसन सुब्बम्मा नायुडु के लिए शक्कर (एक प्रकार की दवा) पहुंचाने आये। साहूकार जी, नाई वेंकन्ना आदि भी वहां मौजूद थे, सभी ने अपनी-अपनी राय जाहिर की कि औरत पर जुल्म करना ठीक नहीं,... मामला आपस में

शांति से निबटा लेना चाहिए... बद अच्छा, बदनाम बुरा... आप भला तो जग भला... आदि आदि। नारायुडु ने सब स्वीकारते हुए कहा--'जी हां, आप बिलकुल ठीक फरमा रहे हैं।'

जब नायुडु एकदम शांत होकर रोब-दाब की अपनी पुरानी रंगत में आये तब पूछ बैठे--'अरे! अब वह छोकरी है कहां?'

'हमारे घर में है बाबूजी!' नारायुडु ने बड़ी विनम्रता से उत्तर दिया।

'तो मेरी एक बात सुन... फौरन उसे ले जाकर उसकी मां को सौंप दे और कल सुबह तू अपने भाई के साथ यहां आ जाना। अपनी बेटी को लेकर वह भी यहां पहुंच जायेगी। मैं खुद मालूम करना चाहता हूं कि असल में मामला क्या है। सोच-विचार कर जो कुछ ठीक लगेगा, कह दूंगा। समझे।' नायुडु ने कहा।

नारायुडु की जान में जान आयी। उसने कहा, 'जी बाबूजी! कल प्रातः जरूर हाजिर होंगे।' एर्रेम्मा जिन लोगों को साथ लेकर आयी थी, उन सब के चेहरे फीके पड़ गये। नायुडु कुर्सी से उठकर जाने को मुड़े तो नरसम्मा कुछ डरते-डरते बोली, 'बाबूजी! आपने असली फरियादी से कुछ नहीं पूछा।'

'हां! हां! कल अपनी मां को भी ले आना!' नायुडु ने कहा। दूसरे पक्ष के लोगों के मुंह भी खिल उठे।

कहते हैं, 'लक्ष्मी को आना होता है तो अंधेरे में भी आ जाती है।' अब इसका मजा ही किरकिरा हो गया। इसलिए अब यह चांदनी की चदरिया ओढ़कर आयी है। आज तो बंगारी के यहां इतनी भीड़ हो गयी कि तिल धरने को जगह नहीं। पैडय्या बाहर खटिया डालकर बैठ गया। लोग यह जानने के लिए फिर इकट्ठे हो गये कि आखिर नायुडु की क्या प्रतिक्रिया थी।'

थोड़ी देर के बाद एक एक करके सब लोग बाहर आने लगे। आखिर में सन्नी भी मुस्कराती आंखों के साथ बाहर चली आयी थी।

चांदनी में उसकी पीली साड़ी सफेद दीख रही थी। काले-काले बालों के जूड़े में गेंदे के लाल-लाल फूल खोंसे हुए थे। नारायुडु भी साथ था। वह आगे-आगे चल रही थी।

थोड़ी दूर पर उसके घर के लोग खड़े थे, जो छाया में थे। छोटा भाई सन्नी को जहां खींचकर लाया था, वहां तक पहुंचाकर नारायुडु अपने घर की तरफ लौट पड़ा।

* * *

असिरि नायुडु कोई भारी भरकम शरीर वाला आदमी नहीं है। कद न ऊंचा, न छोटा। मगर रौब-दाब और गूंजती आवाज ऐसी कि दिल दहल जाता। बात ऐसे करता जैसे गांव का उद्धार करने का बीड़ा अपने ऊपर ले लिया हो। गांव का कोई झगड़ा नहीं, जो उनके बिना निबट सके। उन्होंने बहुतों का उपकार किया है। विधाता ने उन्हें गढ़ते समय शक्ति का उपकरण उनमें कहां लगाया, पता नहीं। मगर बोलने के साथ जब वह हाथ हिलाने लगते

हैं तो लगता है कि जैसे शेर गरजते हुए अपना पंजा चला रहा हो। यद्यपि लोग इनसे डरते हैं मगर इनका आदर-सम्मान भी बहुत करते हैं। शादी-ब्याह से लेकर मरने-जीने के सब मशविरे उनके साथ किये जाते हैं। हां, उनकी दोनों बेटियों की शादियां भी संभ्रांत घरों के लड़कों से हो चुकी है। तीनों बेटे अच्छी नौकरियों में लगे हुए हैं। चौथा विदेश जाने की तैयारी में है। अच्छी खासी जमीन-जायदाद भी है। मालकिन तो साक्षात लक्ष्मी है' लक्ष्मी! जैसे ही उन्होंने ससुराल में कदम रखा है, घर की बड़ी बरक्कत हो गयी है।

इसीलिए उस प्रदेश का विधायक जब भी नायुडु से मिलता तो यही कहता, 'तुम बड़े खुशनसीब हो। घर-परिवार व्यवस्थित है। गांव में तुम्हारी खूब चलती है। बिरादरी में अच्छा नाम है। आदमी हो तो ऐसा।'

उसके मन में शायद इस बात का डर था कि भविष्य में कहीं यह मेरा प्रतिद्वंद्वी न बने। मगर ऐसा नहीं हुआ।

असिरि नायुडु को राजनीति से बड़ी चिढ़ थी। उसका यह ख्याल था कि राजनीति से आदमी खराब हो जाता है। वह कहता है कि अपना उसूल तो 'नेकी कर दरिया में डाल' है। बस! वह पहले गांधीजी का परम भक्त था। अब भी खादी पहनता है। उसका मानना है कि गांधी जी के बाद राजनीति में भाई-भतीजावाद आ गया।'

उसके लिए अब अपना गांव ही सब कुछ है। लोगों की भलाई में ही अपना हित मानता है। वह कहता है कि आपस में लड़ाई-झगड़ा मत करो। नेकी का रास्ता अपनाओ। उसी से तुम्हारी रक्षा होगी। उसकी बातों से ऐसा लगता है कि गांव का उद्धार करने का बीड़ा उसने उठा लिया हो।

गांव के लोग उसकी बातें जब सुनते हैं तो 'हूं हां' कहते हैं। आदमी के ओट होते ही सब कुछ भूल जाते हैं।

नायुडु को दो बातें बिल्कुल पसंद नहीं। एक तो चोरी, दूसरी ऊपर से सीना-जोरी।

'अरे बेवकूफो! खाने को नहीं हो तो भीख मांग ले। भीख न मिले तो मर जा। अगर चोरी करेगा तो दोनों लोक बरबाद हो जायेंगे–इह लोक भी और परलोक भी।'

इनकी राय में कोई चोर सेंध लगाता है तो ठीक है। वह मेहनत करता है। उसे क्षमा किया जा सकता है, मगर उसे नहीं जो कटी हुई फसल चोरी करके ले जाता है। कोई भी किसान अपने खेत की रखवाली करते हुए दिन-रात बैठा नहीं रहता। आपस में विश्वास करना ही होता है। ऐसी चोरी को वे कतई पसंद नहीं करते थे। आवेश में आने पर गालियों की बौछार कर देते। मुंह में जो आता बोल जाते। फिर उसकी हड्डी-पसली एक कर देते।

फिर भी गांव के खेत-खलिहानों में चोरियां होती ही थीं। कभी-कभी अनदेखा कर देते, कभी डरा-धमका देते।

जोर जबर्दस्ती के मामले में भी नायुडु अपनी बात पर अड़े रहते। सामने वाले को दबाने में अपनी पूरी ताकत लगा देते।

'... गांव में पटेल-पटवारी हैं, शहर में पुलिस चौकियां हैं। अदालत हैं। मार-पीट करके लड़ाई-झगड़ा करके वहां जाना चाहो तो जाओ...। मगर यहां मैं भी चुप रहने वाला नहीं। गली-मोहल्ले में होने वाली जोर-जबर्दस्ती मुझसे नहीं देखी जायेगी। ऐसी बुरी हरकतों का मैं खातमा करके छोडूंगा।' नायुडु दहाड़ते हुए कहते और ऐसा करते भी।

जोर-जबर्दस्ती से उन्हें बहुत नफरत थी। तभी तो कोटय्या के कल के कुकर्म से अपने को रोक नहीं सके। इसलिए आज पर्व का दिन होने होने के बावजूद सबको अपने यहां बुलवा भेजा।

मगर सुबह उसे फुरसत नहीं मिली। दोपहर को भी उसका यही हाल रहा। यह देखकर पापय्या ने नायुडु से कहा--

'बाबूजी! सुबह से उन लोगों के घर में चूल्हे नहीं जले। इस बात के इंतजार में वे बैठे हैं कि कब आपके यहां से बुलावा आयेगा। अब दोपहर हो चुकी है। कल छोकरे को गांव छोड़कर शहर जाना पड़ेगा।'

'तो ठीक है। शाम को बुला भेजना।' नायुडु ने कहा।

शाम को नायुडु को घर लौटने में बहुत देर हो चुकी थी। इस बीच पापय्या सबको ले आये। सब इंतजार करते रहे। कुछ बाहर बैठे हुए थे और कुछ ओसारे में।

नायुडु ने अंदर प्रवेश करते हुए पापय्या से पूछा, 'सब के सब आ गये हैं न?' फिर वे घर के अंदर गये। चाय पीकर बाहर आये और अपनी कुर्सी पर बैठ गये।

उसके सामने एक तरफ नारायुडु उसके पीछे उसकी मां थी। पैडय्या उकडूं बैठा हुआ था। उसके पीछे दो औरतें खड़ी हुई थीं।

दूसरी तरफ शरीर और सिर पर लगे घावों पर पट्टियां बांधे एर्रम्मा, उसकी बगल में दोनों बेटियां थीं। उनके पीछे पड़ोस की नरसम्मा और चारेक मर्द एवं औरतें थीं।

'वे सब कौन हैं?' नायुडु ने प्रश्न किया।

'गवाह हैं बाबूजी!' नरसम्मा ने कहा।

'अरे तू चुप रह! एर्रम्मा! तू बोल ये सब कौन हैं?'

'कल मुझे खूब मारा-पीटा था बाबूजी! देखिए न कितने घाव हो गये। हड्डियां तोड़ दी गयीं।'

'अच्छा हुआ। उसने हड्डियां तोड़ दीं, तेरे तो मुंह पर सिलाई कर देनी चाहिए थी। मैं होता तो तेरी जीभ काट देता।' नायुडु ने गुस्से में कहा।

नारायुडु के पक्ष की औरतें मुंह दूसरी तरफ घुमाकर हंसने लगीं।

'बाबूजी! अगर आप इस तरह तरफदारी करेंगे तो वे लोग बहक जायेंगे न!' एर्रम्मा की तरफ के किसी व्यक्ति ने कहा।

'अड़ोस-पड़ोस में रहते हुए तुम लोग इस तरह के झगड़ों को बढ़ावा देकर तमाशा देखने लगते हो। झगड़ा कल हुआ और गवाहों को आज पेश कर रहे हो। झगड़ा तो कल

ही खतम हो गया।' नायुडु की बात सुनकर सब के सब चुप हो गयीं। एर्रम्मा के मन में आया कि वह यह कह दे कि 'कल आपने क्या फैसला किया था, मैं रात भर घावों की पीड़ा से कराहती रही।' मगर उनका चेहरा गुस्से से भरा हुआ था। पता नहीं, वे क्या कह दें। वह चुप रह गयी।

थोड़ी देर के बाद शांत स्वर में वे बोले, 'मैं देखता हूं, चमारों की बस्ती में किसी न किसी कोने में कुछ न कुछ होता ही रहता है। लड़ना-झगड़ना, रोना-पीटना या गाली-गलौज। तुम लोगों के पास ऐसी क्या जमीन-जायदाद है जिसके लिए तुम लड़ते-झगड़ते रहते हो? खेत में पानी का झगड़ा नहीं, न झगड़ा खेत-खलिहान की सरहद का? फिर ये झगड़े क्यों हो रहे हैं?'

नायुडु ने देखा कि सब के सब सिर झुकाये खड़े थे। फिर उन्होंने बोलना शुरू किया, 'भगवान ने तुम्हें ताकत दी है। काम करके कुछ कमा सकते हो। सब लोग काम पर जाकर रूखा-सूखा ही सही कमा सकते हो। इस तरह झगड़ने से क्या मिलने वाला है? तुम लोग समझते क्यों नहीं कि मिलजुल कर रहने में कितना फायदा है। ऐसा कोई कीड़ा है जो तुम लोगों को अंदर से खोखला बनाते जा रहा है। क्या बोलते हो?' नायुडु ने उन लोगों से प्रश्न किया।

वे लोग क्या बोलते? क्या बोलने से बात नायुडु की समझ में आयेगी?'

'इसलिए मैं कहता हूं आपस में मेलजोल बढ़ाकर रहो। इसी में राजी-खुशी है।'

अंत में नायुडु ने पूछा, 'आखिर इस झगड़े का मूल कारण क्या है?'

न एर्रम्मा कुछ समझा सकी, न एर्रम्मा की तरफदारी करने वाले। किसने, किसे, क्या कहा? फिर उसके जवाब में दूसरे ने क्या कहा--हर कोई यही बताता रहा। मगर इससे नायुडु को संतोष नहीं हुआ। तब नारायुडु ने बगैर किसी का पक्ष लेते हुए जहां तक हो सका, पूरी बातें समझा दीं।

अब नायुडु को तसल्ली हुई।

'अच्छा! यह बात है!' नायुडु ने सिर हिलाते हुए कहा।

फिर पड़ोस वाली नरसम्मा ने कहा, 'बाबूजी! किसी से मुझे मालूम हुआ कि बंगारम्मा ने कहा कि एक साल के अंदर मैं अपने बेटी की दूसरी शादी न कराऊं तो मेरा नाम बंगारी नहीं। यह बात मैंने अपने कानों से सुनी तो नहीं, मगर किसी ने बताया था। मैं समझती हूं झगड़े का मूल कारण यह हो सकता है।'

बंगारी ने कुछ कहना चाहा तो नायुडु ने उसे रोक दिया।

'अच्छा सुनो, क्या नाम है तुम्हारा? नरसम्मा है न?'

'.....'

'क्या तू एर्रम्मा की तरफ से वकील की गवाही देने आयी थी?'

'.....'

'या एर्रेम्मा ने अपनी वकालत तुझे सौंपी है?'

'बाबूजी माफ करो! यह बात आपको बताने के लिए मैं खुद बोलने लगी। एक तो मुझे ठीक से बोलना नहीं आता है, दूसरे मेरी तबीयत भी कुछ ठीक नहीं है।' एर्रेम्मा ने अपनी सफाई पेश की।

'ठीक है!... अच्छा, तू उसकी बेटी है न?' सन्नेम्मा की तरफ देखते हुए नायुडु ने प्रश्न किया।

उसने हां में सिर हिला दिया।

'तुम्हारी ससुराल का नाम क्या है?'

सन्नेम्मा ने बता दिया।

'एर्री! तेरे घर का नाम क्या है?' नायुडु ने पूछा।

'आपको मालूम नहीं है क्या?' एर्रेम्मा ने उलटा जवाब दिया।

'अरी बेवकूफ! बताती है कि नहीं?'

एर्रेम्मा ने बता दिया।

'वह तुम्हारे घर की पहले कभी थी, अब भले ही वह तुम्हारे परिवार की हो मगर सिर्फ तुम्हारी बेटी नहीं। समझी...? वह चाहे तो आयेगी; उसके मर्द को मंजूर हो तो तुम्हारे घर आयेगी; उसके मर्द को या सास को पसंद हो तो भेजेंगे, वर्ना नहीं भेजेंगे। यह कहने का कोई हक तुझे नहीं है कि मैं अपनी बेटी को अपने घर ले जाऊंगी। आगे से ऐसा नहीं कहना।' नायुडु ने कहा।

एर्रेम्मा की आंखों में जैसे आंसू सूख गये। वह एकटक नायुडु की तरफ देखती रह गयी।

'अगर तू अपनी बेटी को ले जाना चाहती है तो उनसे पूछ कर ले जा! या फिर अपनी बेटी को तब ले जा, जब वह तलाक के लिए तैयार हो।'

आखिरी शब्द नारायुडु को बहुत खटका।

'बाबूजी! लड़की की हक की बातें रहने दीजिए। दोनों तरफ से हक तो रहेंगे ही। हम उनको नकारना नहीं चाहते।' नारायुडु ने स्वर में भरसक उदारता लाते हुए कहा।

'उसके मन में इस बात का रोष था कि जब उसकी समधिन के चार-चार बेटे और दो-दो बहुएं थीं तो अपनी बेटी को भेजने में रोक क्यों लगाई?' इसी बात को लेकर सास एर्रेम्मा ने हंगामा मचाया।'

... मेरे पिताजी के जमाने में तालाब वाली बंजर जमीन में पच्चीस सेंट की भूमि आपने दिलवायी थी। उसे खेती के योग्य बनाने के लिए हमने बहुत पैसा खर्च किया। अब भी बहुत काम बाकी पड़ा हुआ था; इसीलिए कुछ कमाने के लिए मेरा भाई शहर चला गया था...।

बहुत मेहनत के बावजूद वह ज्यादा बचा नहीं पा रहा था। हमें तो उसी की चिंता

रहती है। सोचा था, उसकी औरत को वहां भेज देंगे। मगर इससे संकट और बढ़ जाता। दूसरे वह अभी छोटी है। मैंने उससे कहा, तू भी यहीं रह ले। मेहनत-मजदूरी करेंगे और काम चला लेंगे। मगर वह नहीं मानता। कहता है कि एक साल और देखूंगा।

दो साल हो गये, अभी तक वह कुछ ज्यादा बचा नहीं पा रहा था... और यहां की हालत तो दिनों-दिन बदतर होती जा रही है। बच्चों को भी पेट भर खाना खिलाने की स्थिति नहीं रह गयी है...। बाबूजी! इस पापी पेट के खातिर ही इतनी चिल्ल-पों मच रही थी...।' नारायुडु ने अपनी लंबी दास्तान खतम कर दी।

नायुडु ने सोचा, नारायुडु ने जो कुछ कह सुनाया, उसमें पूरा तो नहीं... पर कुछ सचाई ज़रूर है। थोड़ी देर बाद फिर नारायुडु ने कहा, 'बाबूजी! मैं इस विस्तार में नहीं जाना चाहता कि इस मामले में दोष किसका है; मेरी मां का या सास एर्रेम्मा का! किंतु एक बात है--सास एर्रेम्मा चाहती हैं कि उनका दामाद शहर में अपनी घर-गिरस्ती कायम कर ले।'

'बाप रे बाप!' एर्रेम्मा कुछ कहने ही जा रही थी कि नारायुडु ने उसे रोककर कहा, 'मैंने सुनी-सुनायी बात दुहरायी है। सचाई इसमें भले ही न हो, मगर तेरे मन में तो यह बात होगी ही...। कुछ भी हो, अगर तेरा कोई सहारा बनेगा तो दामाद ही बनेगा। यह दामाद नहीं तो, दूसरा। भलाई तो उन्हीं से होगी...।

... हां, पैडय्या शहर जाकर बैठ गया तो इन लोगों के लिए और भी मुसीबत होगी। बाबूजी! मेरा तो यह मानना है कि अपनापन ही आदमी का संबल है। यह जिंदगी चार दिन की चांदनी है। हमारी जाति में इतनी-सी समझ भी नहीं।' नायुडु की तरफ सधी आंखों से देखते हुए नारायुडु ने अपनी बात पूरी की।

कई लोगों को उसका तौर-तरीका, सोच-समझ भाया। मगर ऐसा लगा कि कुछ लोगों पर इसका कुछ भी असर नहीं हुआ। नायुडु के फैसले और नारायुडु की सूझबूझ भरी बातों की बारीकियों का अहसास किसी को नहीं हुआ। नायुडु ने इसका अनुभव शायद ही किया हो।

'अरी ससुरी! उसकी बातें सुन चुकी है न?' एर्री की तरफ देखते हुए नायुडु ने कहा।

'बहुत मीठी है।' एर्री ने झट से जवाब दिया।

'चुप रह।' नायुडु ने उसे बहुत खरी-खोटी सुनायी। उसके बाद किसी को मुंह खोलने का साहस नहीं हुआ। नायुडु को इस बात का ध्यान तक न रहा कि वक्त कितना गुजर चुका था। थोड़ी देर के बाद वह खुद बोला, 'अरे! बाहर बत्ती तो जला दो।'

ओसारे में भी बत्तियां जला दी गयीं।

कुछ देर बाद नायुडु ने कहा, 'कुछ और बोलना हो तो बोलो।'

'क्या बोलना बाबूजी! आप बात-बात में नाराज हो जाते हैं। बड़े संयत स्वर में एर्री बोली। नायुडु ने उसकी आवाज को पहचाना। मगर कुछ जवाब नहीं दिया।

थोड़ा वक्त और गुजर गया।

सामने आते हुए एर्रेम्मा को लाठी से ठोंकते हुए पापय्या बोला--'अब उठ!'

एर्रेम्मा ने मुंह टेढ़ा करते हुए कहा, 'अरे बड़ा आया! तू परे हट!'

नायुडु ने कहा, 'ससुरी को अपनी लाठी से एक लाठी जमा दो।' एर्रेम्मा कराहते हुए उठ खड़ी हो गयी।

'जा! अपने दामाद को मनाकर अपने घर ले जा!... अच्छा! तेरा नाम बंगारी है न...' बंगारी की तरफ देखते हुए नायुडु ने कहा।

बंगारी ने हां भर दी।

'जो कुछ भी हुआ भूल जा। तुम लोग आपस में झगड़कर बच्चों को परेशानी में डाल रही हो। यह ठीक नहीं...। हां एकाध अवगुण हो तो कौन पहाड़ टूट पड़ेगा। सोच समझ से काम लो। तू तो उससे कुछ गुणी है! घर की भी कुछ अच्छी है। उसकी आह तुझ पर न पड़े। यही मैं चाहता हूं।'--नायुडु ने शांत स्वर में कहा।

बंगारी कुछ कहने के लिए मुंह खोलने ही वाली थी कि नायुडु अंदर चले गये।

उसके बाद जो होना था, वही हुआ।

कल के दिन जिनके दिल में गुलाबी-मादकता के लाल डोरे उभरने वाले थे, आज उभरे। चेहरे की भाव-भंगिमा ने कितने ही नये रूप लिये। पर्दा गिरा।

* * *

रात के नौ बजे। पैडय्या बहुत थका-हारा-सा था। झुंड के उस पशु की तरह जिसे झुंड के सारे पशुओं ने एक होकर सींगों से धक्का दे-देकर लहूलुहान कर दिया हो। थाली के सामने घायल की तरह गुमसुम बैठा हुआ था।

सन्नी पास बैठकर परोस रही थी। एर्रेम्मा अपनी बेटियों के साथ बाहर बैठी हुई थी।

एर्रेम्मा ने बाहर से ही कहा, 'सुन बेटी! नायुडु की बीवी ने जो झोल दिया था, वह भी परोसना!'

नायुडु की पत्नी ने झोल के साथ कुछ साग-सब्जियां भी दी थीं।

जब सब लोग उठकर आने लगे, तो पीछे से खबर मिली कि नायुडु की बीवी एर्रेम्मा को बुला रही है। तब पापय्या वहीं था। बोला, 'डांट-डपट बहुत खायी है। आज पर्व का दिन है। इसलिए खाने-पीने की चीजें देने के लिए शायद बीवीजी ने बुलाया हो। जा, जा!'

एर्रेम्मा ने जाकर देखा तो बीवीजी वहां नहीं दिखी। नायुडुजी कुर्सी पर बैठे हुए थे। नायुडु ने उसे पास बुलाकर कहा, 'मैंने तुझे जो कुछ कहा, तेरी भलाई के लिए कहा। तू तो एकदम ठहरी गरीब। तेरे आगे-पीछे कोई नहीं है। उन लोगों की स्थिति अच्छी है। उनके साथ झगड़ा मत कर। मिल-जुलकर रह और मीठी बातें करना सीख। इसलिए मैंने सुलह कर दी है। समझी!'... और हां... एक बात और है--लगता है, तेरा दामाद समझदार है।

उसे खुश रखना। आज नहीं तो कल ही सही, शहर में वह अपनी गिरस्ती जमा ही लेगा। तेरी बेटी सुखी रहेगी। तू भी मजे में दिन काट सकती है। अपनी दूसरी बेटियों को भी वहां भेज देगी तो काम-धाम कर लेंगी। चार पैसा जमा हो जायेगा। यहां गांव में क्या रखा है? कुछ भी नहीं। पेट भर खाना भी नहीं। जब आदमी भूखा रहता है न, तरह-तरह की विकृतियां तभी उसमें आ जाती हैं।'

नायुडु ने उसे एक बार और समझा-बुझा दिया। फिर अपनी पत्नी को बुलाकर कुछ बची-खुची साग-सब्जियां एर्रेम्मा के हाथ देने को कहा।

पैडय्या के घर जाकर लौटने तक बच्चों को खिला-पिलाकर उसने सोने को कहा। पैडय्या जैसे ही घर से लौटा तो एर्रेम्मा ने सन्नी से परोसने को कहा।

मां के कहने से पहले ही सन्नी ने रसदार सब्जी परोस दी। सब्जी के एक टुकड़े को चखकर पैडय्या ने चावल में सब्जी मिलाई। अन्यमनस्क पैडय्या एर्रेम्मा की बातों से इस दुनिया में लौट आया। आकर चावल तो मिला रहा था पर कौर मुंह तक पहुंच नहीं रहा था।

'भूख नहीं है क्या?' सन्नी ने पूछा।

'भूख तो है...' पैडय्या ने जवाब दिया।

'फिर खाते क्यों नहीं?' सन्नी ने सवाल किया।

पैडय्या ने न कौर उठाया था, न सिर ही।

'यह साड़ी कितने में खरीदी?' सन्नेम्मा ने पूछा।

पैडय्या ने तब भी मुंह ऊपर नहीं उठाया। दो कौर मुंह में डाल लिये। उसके बाद उसने कहा--

'पता नहीं क्यों, खाने को मन नहीं कर रहा है।'

'फिर छोड़ दो!' सन्नी ने करुणा भरे स्वर में कहा।

हाथ धोने के लिए थाली लाने सन्नी उठ खड़ी हुई। पैडय्या असमंजस में पड़ गया।

भूख तो लग रही थी, मगर उससे खाया नहीं जा रहा था। मगर क्यों? खैरात का खाना खाने में न जाने क्यों उसे एक झिझक-सी हो रही थी। मगर उस झोंपड़ी में ऐसी कौन-सी चीज रह गयी थी, जो इस भावना से परे हों।

सन्नी ने थाली लाकर उसकी बगल में रख दी। पैडय्या ने हाथ धो लिया।